कर्म योग

प्रथम प्रकरण

कर्म

कर्म को अज्ञान कहा गया है। कर्म अज्ञान की अवस्था में होता है। कर्म की समझ भी अज्ञान की अवस्था तक रहती है मगर इस बात को कौन समझता है। यदि किसी को कहा जाय कि कर्म अज्ञान है तो वह या तो लिखने वाले को मूर्ख कहेगा या बावला और दीवाना समझेगा।

कर्म करने की ग़रज़ क्या है! सुख की प्राप्ति के लिये कर्म किया जाता है। जब तक मनुष्य यह समझता है कि हमको किसी वस्तु के प्राप्त होने से सुख प्राप्त होगा, तब तक वह कर्म करने के लिये विवश है। इस वाह्य जगत में हम स्पष्ट रूप से देखते हैं कि यदि हमको रोटी न मिले तो भूख के कारण कष्ट पाते हैं। यदि हम जाड़े के दिनों में कपड़े न ओढ़ें तो जाड़े के कारण शरीर ठिठरा रहेगा। यदि हमारे पास धन दौलत न हो तो हमारी आवश्यकतायें पूरी नहीं होतीं। आवश्यकताओं के पूरा न होने से हम दुखी रहते हैं। अज्ञान की दुनियाँ में पग-पग पर आधीनता का प्रश्न है। इस प्रश्न के कारण विभिन्न प्रकार के कर्म करने पड़ते हैं, उपाय सोचने पड़ते हैं और कर्म की पेचीदा उलझनों में फँसना पड़ता है। अँधेरे में बिना दीपक के काम नहीं चलता। बर्तन भांड़े न होने पर हमारे

बहुत से काम पूरे नहीं होते। हम चाहते रहते हैं कि हमारे घर में पलंग हो, पलंग के लिये दरी मिले और दरी पर बिछाने को चादर और पलंग पोश प्राप्त हो। साथ ही लिहाफ रजाई, शाल दुशाले भी रहें। बैठने के लिये मेज कुर्सी हों। आग जलाने को अँगीठी हो। कोयले और लकड़ियां घर में बहुतायत से जमा रहें। पढ़ने लिखने को पुस्तकें हों। पत्र-व्यवहार के लिये कागज, कलम दवात रहें। सन्तान हो, भाई बन्धुओं के साथ सम्बन्ध अच्छे हों। समाज से सम्बन्ध रहे। रोटी कमाने के लिये विभिन्न प्रकार के उद्यमों की ओर ध्यान देना पड़ता है। फिर इनकी स्वार्थ लोलुपता, हठ धर्मी, ईर्ष्या द्वेष के खटकों के कारण गवर्नमेंट और गवर्नमेंट के नियम आवश्यक बन जाते हैं। कोई कहाँ तक कहे, यह क्रम इतना बढ़ जाता है कि आदि से लेकर अन्त तक उसी की स्थिति का ख्याल दृष्टि में रहता है। इन सब बातों की ओर से आंखें बन्द कर लेना गलती में दाखिल है। जीवन का कोई क्षण कर्म के मंडल में ऐसा नहीं गुजरता कि जिसमें आवश्यकता और आधीनता के ख्याल न आते हों। ऐसी दशा में यह कैसे सम्भव है कि किसी की तवज्जह या ध्यान को सुगमता से कर्म की ओर से हटाया जा सके। जीवन का रुझान उसकी ओर है। वह इन सब आवश्यकताओं को महसूस करता और कराता है। इस महसूसियत (अनुभूति) के होते हुए कर्म करने वाले अज्ञानी जीव कैसे उच्च दृष्टि, विशाल हृदय और ऊँचे विचार वाले हो सकते हैं। उनके सामने ज्ञान का कथन यदि गोलमोल और निर्थक नहीं है तो क्या है। एक व्यक्ति को पेट भर भोजन नहीं मिलता। वह व्याकुल है। इसका सारा ध्यान रोटियों की ओर है। जब वह पूर्णतया रोटियों की ही ओर आकर्षित है तो उसकी दृष्टि कैसे और किस प्रकार ज्ञान की ओर जा सकती है।

जैसी दशा है उसके अनुसार उसकी शिक्षा और दीक्षा होनी चाहिए। उसको अवसर मिलना चाहिए कि जब तक वह संकीर्ण हृदयता और क्षुद्र पात्रता को अपने आप त्याग न कर दे तब तक भूलकर भी उसको ज्ञान की ओर झुकाना, ज्ञान का ख्याल दिलाना और ज्ञान का महत्व बताना भूल और गलती होगी। इसको अनुभव करने दो। जब वह कर्म की सब श्रेणियाँ तय कर लेगा स्वयं बिना किसी खटका और गिला के असलियत की ओर झुकेगा। कर्म के मंडल में केवल कर्म ही का उपदेश और कर्म ही की शिक्षा देनी चाहिए। विचार बहुत प्रबल और शक्तिशाली वस्तु है। जब एक ख्याल हृदय पर जमा हुआ है और अधिकार जमाये हुए है तो उसको किसी दूसरी ओर झुकाना कष्ट का कारण होगा। आप उसको ज्ञान की बातें बतायें मगर वह इसका अधिकारी नहीं है। यदि वह मुँह देखे की लाज, कहने सुनने अथवा चमत्कारक पूजा के ख्याल से इधर झुक भी गया तो इस झुकने से इसका काम नहीं बनेगा, क्योंकि कर्म के संस्कार हृदय रूपी पात्र में पहिले से मौजूद हैं। दूसरे संस्कार जिस समय उसके हृदय में प्रवेश कराये जायेंगे तो दोनों में हाथापाई होगी और वह बहुत बेचैन और दुखी होगा।

जो व्यक्ति जैसा है या जो सोसाइटी जैसी है उसको उसी हालत में छोड़ दो और उस हालत में उसी के अनुसार शिक्षा दो। कुछ समय के पश्चात वह उन्नति करता हुआ असलियत की ओर झुकेगा। उस समय ज्ञान की शिक्षा कुछ अर्थ रक्खेगी। समय से पहले काम करने से कठिनाइयाँ पैदा होंगी।

जब तक हम किसी दूसरी वस्तु के सम्बन्ध से सुख प्राप्त करने के इच्छुक हैं तब तक उसके दास हैं और उसके बिना नहीं रह सकते। जब हमको यह ज्ञात हो जायगा कि असली

सुख हम में है, हमारे अन्दर हैं और हम स्वयं सुख स्वरूप हैं तब कर्म का बन्धन आप ही आप टूट जायगा। हजार प्रयत्न किये जायँ, हजार उपाय सुझाये जायँ, सब निर्थक और व्यर्थ हैं। जब मनुष्य जान जाता है कि हम पूर्ण और स्वतन्त्र हैं और हमारे पूर्ण करने के लिये किसी और वस्तु की आवश्यकता शेष नहीं है तब वह मोक्ष पद को पा लेता है और कैवल्य पद का स्वयं अधिकारी बन जाता है।

कर्म के क्षेत्र में कर्म का प्रश्न क्षण-क्षण में सर्वदा उठेगा। एक आदमी को रुपये की आवश्यकता है। वह रुपया पैदा करने का प्रयत्न करेगा। उसने इसी प्रकार के संस्कारों से अपने हृदय रूपी पात्र को भर रक्खा है और उसी की चिन्ता में यह रात दिन उखाड़ पछाड़ करता है। एक दो नहीं किन्तु हजारों तरह के विचार आपस में एक दूसरे के साथ गुथे हुये इसको बांधे रखते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वह इस विषय में योग्यतायें पैदा कर लेगा और शीघ्र धनवान बन जायगा। जब वह धनवान हो जायगा और धनवान पने के सब मरहलों को तय कर लेगा, धन की असलियत समझ कर जान लेगा कि सुख इसमें नहीं है, इसमें सुख समझना गलती है, उस समय वह तुम्हारी बात सुनने की ओर आकर्षित होगा। क्या उस समय तक तुम इन्तजार नहीं कर सकते।

ईश्वर की लीला विचित्र है। उसकी दुनियाँ विचित्र है। दुनियां चूंकि संकल्प है और संकल्पों के तारतम्य से बनी है, इसलिये जिस समय जो संकल्प प्रबल होगा वह दृढ़ता के साथ उसी प्रकार के सामान को अपनी ओर खींचेगा और अस्थाई रूप से उससे लाभ उठायेगा। जहाँ जिस वस्तु की माँग होती है वहाँ वह वस्तु अपने आप आकर मौजूद हो जाती है अथवा दूसरे शब्दों में जो वस्तु जहाँ होती है, सच्चे इच्छुक किसी न

किसी तरह उस तक पहुँच जाते हैं। बाग़ में फूल खिले। न मालूम किधर से शहद की मक्खियाँ मँडलाती हुईं और भिन-भिनाती हुई उसके चारों ओर मंडलाने लगीं। दीपक जल रहा है। क्या जाने कहाँ से लाखों कीड़े उसके प्रकाश की किरणों से खिंच कर प्राण निछावर कर डालते हैं।

एक बात तो यह हुई कि सच्चे इच्छुक अपने आप अपनी इच्छित वस्तु की ओर प्रकृति के नियम के अनुसार खिंच आते हैं। दूसरी बात यह है कि जिस हृदय में सच्ची मांग है और किसी विशेष वस्तु के लिये सच्ची तड़प है तो वह वस्तु स्वयं उसकी ओर आकर्षित होती है। किसी तंग और अँधेरी गुफा में २० गज लम्बा भयानक अजगर कुण्डली मार कर प्रत्यक्ष में अचेत पड़ा हुआ है। उसको भोजन की इच्छा है। उसके हृदय की आकर्षण करने वाली धारें चारों ओर फैली हुई हैं। वह न कहीं आता है न कहीं जाता है, और न कहीं आ जा सकता है मगर उसके हृदय की आकर्षण शक्ति की धारें उड़ते हुये पक्षी, रेंगते हुये कीड़े, चलते हुये मनुष्य और पशुओं को उसके पास खेंच लाती हैं। वह क्षण भर में सबको निगल जाता है। हमने अपनी इन आँखों से ऐसे दृश्य बहुत देखे हैं। मनुष्य जो चाहता है, चाहे वह किसी मण्डल में क्यों न हो, ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे, वह उस चाह की पूर्ति करके रहेगा।

यह प्रकृति का निश्चित सिद्धान्त है। सम्भव है इस वक्त तुम इसको न समझ सको मगर हृदय को थोड़ी गति देने से और थोड़ा सोचने से यह बात सुगमता से समझ में आ सकती है। कहा है:—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

सारी बात संकल्प और ध्यान पर निर्भर है। जब तक मन कमजोर है, जब तक संकल्प और ध्यान में दृढ़ता नहीं है तब तक यह बात निस्संदेह प्राप्त नहीं होती। जब मन शक्तिशाली बन जायगा चाहे वह किसी स्थान पर बैठा हुआ हो अपने प्रयत्नों में कभी असफल न होगा।

कमजोर दिल की ख्वाहिश, तुम सुन लो दोस्तो।
पूरन न होगी एक से ले सौ हज़ार तक॥

इसलिये इस ख्याल को छोड़ो कि हम यही शिक्षा देने के अधिकारी बनकर आये हैं। नहीं, नहीं। समय सर्वदा अपने अनुकूल नये नये शिक्षक उत्पन्न करता रहता है, जो समय की आवश्यकता के प्रश्नों और रहस्यों को हल कर देते हैं और पेचदार से पेचदार विषयों के सुलझाने में सहायक बनते हैं। यह तुम इतिहास के पृष्ठों से सीख सकते हो। कभी परशुराम अवतार है तो कभी राम का अवतार है। कभी सोलह कला के कृष्ण भगवान अपनी निराली सज धज से जगत को चकाचौंध कर देते हैं, कभी ध्वजा हाथ में लिये हुये राजसिंहासन को लात मारने वाले बुद्ध भगवान प्रगट हो कर अपनी शिक्षा का क्रम प्रारम्भ करते हैं।

इस्लाम के प्रचार के समय में परमसंत कबीर साहब प्रगट हुये। बाबर के समय में गुरु नानक ने अपना प्रभुत्व दिखाया। अंग्रेजी युग में परम पुरुष राधास्वामी दयाल ने साइंस और तत्व ज्ञान के अनुसार अपनी शिक्षा चालू की। अधिकार और संस्कार की बात है। जिस समय जैसे अधिकारी और संस्कारी होते हैं उस समय उनके अधिकार के अनुसार वैसा ही शिक्षा का क्रम प्रारम्भ होता है। इसलिये अपने आप को अधिक महत्व न दो। जब जैसा समय आयेगा, तब वैसे शिक्षक दुनियाँ में प्रगट होंगे। इसलिए तुमसे जो कुछ

हो सके, जिसके लिये तुम बनाये गये हो, अपना काम अपने समय में कर जाओ। भविष्य के प्रश्न को भावी शिक्षकों के अर्पण करो।

जो कर्म के अधिकारी हैं. उनको उसी राह पर चलने दो। उनसे कहो कर्म करो, दिल खोल कर कर्म करो। कर्म ही की ओर अपने मनकी शक्तियों को लगा दो। बेकार कभी न रहो। जिस तरह चाहो अपने मानसिक भावों को गति देते रहो। इसी में सबका कल्याण है।

कर्म के अधिकारियों को कर्म करने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है और बिना कर्म किये उनका निर्वाह नहीं है। जिस काम में रुचि हो वह करे, दुनियां का कोई काम ऐसा नहीं है जो उत्तम या मध्यम समझा जाय। किसी से घृणा करना व्यर्थ है। उत्तम काम करने वाले इस कारण बड़े नहीं हैं कि वह उत्तम काम करते हैं। मध्यम कर्म करने वाले इस कारण से छोटे नहीं हैं कि वह मध्यम काम करते हैं। हर प्रकार का काम स्वयं पवित्र है। एक मल का टोकरा ढोने वाला मेहतर वैसे ही इस जगत में पवित्र काम कर रहा है जैसे कि मन्दिरों में पूजा करने वाला पुजारी। एक लेखक की वही हैसियत है जो एक जूता गाँठने वाले की; क्योंकि दोनों ही अपनी अपनी जगह पर आवश्यक कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। यदि जूते बनाने वाले न हों तो समाज के जूते के प्रश्न को कौन हल करेगा। यदि योग्य लेखक न हों तो समाज को कौन उच्च दृष्टि बनाने का प्रबन्ध करेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी जगह पर विशेष प्रकार का प्रबन्ध रखता है। कभी किसी का निरादर नहीं करना चाहिये।

एक बात आवश्यक है। उसको देखना चाहिये कि कर्म

करने वाला किस ढंग पर काम करता है। यदि वह पूर्णतया अपने काम में व्यस्त है, यदि वह उस काम में अपने आप को भुला देता है तो किसी न किसी समय वह काम बरकत का कारण बनेगा यद्यपि बरकत का कारण तो वह अब भी है। अभिप्राय तो यही है कि काम में अपने आपे को भूलना (आत्म-विस्मृति) है और यही आत्म-विस्मृति सुख का कारण और मुक्ति की दाता है, किन्तु यदि वह काम भी करता है और काम के सिलसिले में अपनी याद भी रखता है तो वह काम उस समय तक धिक्कारने योग्य है, जब तक काम की धुन में बेखुदी की अवस्था प्राप्त न हो जाय। इस प्रकार का काम तरह तरह के बन्धनों का कारण होता है और पेच दर पेच गुत्थियों को पैदा करता हुआ इसको कहीं का नहीं छोड़ता। दफ्तरों के बाबुओं की दृष्टि घड़ी की सुइयों पर रहती है। जो इस बात के इच्छुक रहते हैं कि कब चार का घंटा बजे और कब घर का रास्ता लें, वह अपने काम को धिक्कारने योग्य बना लेते हैं और आप भी तिरस्कार योग्य हो जाते हैं। यह सम्भव है कि वह अपने टके सीधे करलें और रोटी कमालें मगर इन का जीवन सफली भूत नहीं होगा। सफलता इनसे कोसों दूर है। ईश्वर जानें सफलता कब तक के लिये इनसे दूर रहेगी। सफलीभूत वह व्यक्ति होता है जो सारी शक्ति काम में खर्च कर देता है। इसके अन्दर उच्चकोटि का साहस और उच्च-कोटि की सचाई निवास करती है। वह कर्म के सिलसिले में अपना काम बनाता हुआ जा रहा है। लोक परलोक दोनों का ख्याल इसकी दृष्टि से ओझल है। वह सच्चा कर्मकाण्डी है। प्रश्न यह है कि सब कुछ ठीक है मगर इस प्रकार के कर्म करने वाले के लिये क्या कोई धार्मिक लाभ नहीं है। उत्तर— क्यों नहीं! कर्म करना ही इसका धर्म है और कर्म स्वयं

इस ध्येय की ओर लिये जा रहा है जिसकी ओर धर्म संकेत करता रहता है। ऐसे कर्मकाण्डी के लिये धर्म उदारता से काम प्रदान करता है कि कर्म करो। कर्म के फल की इच्छा न रक्खो। कर्म और उसके फल दोनों को ईश्वर के अर्पण करते जाओ। कर्म का फल तो तत्काल मिलता है, मिलेगा और मिल कर रहेगा। कोई आकाशीय या पृथ्वी की शक्ति इस को छीन नहीं सकती, मगर फल और कर्म को ईश्वरार्पण करते रहने से कर्म का बन्धन न बढ़ेगा, और न इसके ऊपर दुख और कष्ट का आक्रमण होगा; क्योंकि दुखों का आक्रमण केवल उस जगह हुआ करता है जहाँ किसी विशेष स्वार्थ का सवाल रहता है। इस प्रकार कुछ दिनों तक मनुष्य काम करे। यदि काम किसी प्रयोजन के साथ आरम्भ किया गया है तो भी हानि नहीं है। जिस समय कर्म करते करते वह अपने आप को भूलने लगेगा, फिर उसका बन्धन आप ही आप ढीला पड़ जायगा। अभी तक वह अपनी देह में सीमित है। अपने कर्त्तव्य कर्मों की जंजीर में जकड़ा हुआ है। अभी तक उसकी दृष्टि लाभ और निजी उन्नति की ओर है। कुछ दिनों बाद उसका हृदय ऊँचा हो जायगा अर्थात् कर्त्तव्य कर्म फैल कर इतने विस्तृत हो जायेंगे कि सारी दुनिया में व्यापक बनने की कोशिश करेंगे। यहां आकर अन्तःकरण की शुद्धि के साथ साथ वह कुछ का कुछ हो जायगा। मनुष्य में जितना निःस्वार्थपना होगा उतना ही उसका जीवन सफल कहलाने का अधिकारी समझा जायेगा।

प्रारम्भ में तुमको कोई अधिकार नहीं है कि किसी व्यक्ति से कहो कि निस्स्वार्थ पने के साथ काम करो। साधारण आदमी समझ भी नहीं सकता कि वह कैसे निस्स्वार्थ काम कर सकता है। वह पढ़ता है स्वार्थ के लिये, लिखता है स्वार्थ के

लिये, नौकरी करता है स्वार्थ के लिये, शादी-विवाह करता है स्वार्थ के लिये। जहाँ स्वार्थ की सैकड़ों सूरतें हैं वहाँ काम की जड़ को अधिकार पाने का अवसर नहीं मिलता। यहाँ भी तुमको इन्तजार करने की आवश्यकता है। शीघ्रता करना व्यर्थ है। तुम केवल यह देखो कि इसके काम करने का ढंग कैसा है। यदि उसके काम में और उसके काम करने के ढंग में वह गुण मौजूद हैं जो निष्काम कर्म की ओर लेजाने वाले हैं, तब तुम नियम के साथ उसको आदेश दे सकते हो कि निष्काम कर्म करो। दुनियाँ स्वार्थ की है। यहाँ स्वार्थ ही स्वार्थ है।

एक लेखक पुस्तक लिखता है। सम्भव है उसको रुपया पैसा कमाने की इच्छा न हो मगर प्रशंसा का भूखा है। एक उपदेशक प्रसन्नतापूर्वक उपदेश सुनाया करता है; वह भी किसी स्वार्थ से करता है। कर्म के बदले में कोई रुपया चाहता है कोई प्रशंसा चाहता है, कोई हुकूमत और मिलनसारी का प्रेमी है। किसी की इच्छा रहती है कि मेरी बात रहे। एक दानी सदावर्त देता है। वह भी वाह-वाही का अभिलाषी है। अभिप्राय यह कि दुनियाँ में कहीं भी कोई कर्म ऐसा दिखाई नहीं देता जो संगठित रूप से पवित्र और शुद्ध कहा जाय। फिर भी सब काम चाहे प्रारम्भ में कैसे ही दिखाई दें, यदि उनमें मन शामिल है तो किसी समय वह पवित्र हो जायेंगे और काम करने वाला निष्काम कर्म करने वाला और पवित्र बन जायगा। अपवित्र है उस नौकर का काम जो डंडे के भय-से काम करता है। घृणित है उस मुन्शी का काम जो डाट फटकार सुनकर काम करता है। बुराहै उस मातहत का काम जो बिना कान ऐंठे और बिना दंड के तत्परता से काम नहीं करता, क्योंकि उसका मन काम में शामिल नहीं है, न काम करने की

उसको स्वाभाविक रुचि है। अभी तक यह कर्म के क्षेत्र में अच्छी तरह नहीं आये हैं। यह मूढ़ अवस्था में हैं, जो पशुओं की सी दशा है। जब यह उन्नति करके तनिक ऊपर चढ़ेंगे तब निस्स्वार्थ काम करने वाले बनेंगे। जब अपने आपसे उनमें कर्म से प्रीति होगी तब धीरे-धीरे निष्काम कर्म करने वाले बनेंगे और जब निष्काम कर्म करने वाले हो गये, उन्नति का मार्ग साफ है, बेखटके चलते रहेंगे और चलते चलते असली ध्येय की प्राप्ति से कभी बंचित न रहेंग।

द्वतीय प्रकरण

कर्म और संकल्प की शक्ति

आस आस सब जग बंधा, गले आस की फांस।
गुरु की कृपा कटाक्ष से, होवे पूरन आस॥

जहाँ जिसका ध्यान ठहरा हुआ है उसको वहीं से अपना रास्ता शुरू करना चाहिये। इधर-उधर भटकना ठीक नहीं। जब हम भली प्रकार देख रहे हैं कि हमारा निवास आशा के जगत में है, चाह के स्थान में है या इच्छा के मंडल में हैं तो हमको आशा चाह और इच्छा के साथ हाथापाई करते हुये चलना चाहिये। किसी दशा में उस का तिरस्कार लाभदायक नहीं होगा। एक आदमी को मिठाई खाने की इच्छा है। उसका मन रह रह कर मिठाई की ओर दौड़ता है। क्यों न वह मिठाई प्राप्त कर के मन की तृप्ति करले। जब वह मिठाई खालेगा उसका चित्त ठिकाने लगेगा और इस ओर तृप्ति हो जाने पर फिर उसके चित्त का रुझान किसी दूसरी ओर होना सम्भव है। जो पेट की चिन्ता से व्याकुल है वह ज्ञान और भक्ति का

किसी तरह अधिकारी नहीं है। उस को इधर आकर्षित करना व्यर्थ है।

इष्ट पद सबका एक है। कर्म ज्ञान और भक्ति इन सबका आदर्श एक है मगर उसकी प्राप्ति के साधन अलग अलग हैं। जो जैसा है, जैसी जिसकी चित वृति है उसके अनुसार उसके मन की गढ़त और उसकी बुद्धि की उन्नति होनी चाहिये। अज्ञानियों को ज्ञान की बातें सुनाकर भूल और भ्रम में न डालो, उनको कर्म करने दो। कर्म करने में ही उनका भला है और करनी के ही द्वारा उनका उद्धार और उपकार होगा। कर्म का निरादर करना गलती है। भूल कर भी कभी कर्म करने वालों से यह न कहो कि वह कर्म को छोड़ कर ज्ञान और भक्ति के मार्ग में आयें। कर्म करने से बड़े बड़े काम होते हैं। कर्म करने से मूढ़ता का अंग निर्बल होता है। जो आदमी आलसी बन कर एक जगह बैठा हुआ है उसका कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं है। ठिकाना तो उसका है जिसने जीवन की यात्रा में पग जमा कर चलना आरम्भ कर दिया है। वह उस मार्ग में गिरेगा, पड़ेगा, पांव काँपेंगे, संभलेगा और किसी न किसी दिन ठिकाने पर पहुँच जायगा।

मगर जो हाथ पर हाथ धरे बैठा है और मक्खी मारने के सिवाय कोई काम नहीं करता है वह रास्ते से बहुत दूर है। चलने वाला यदि भूल चूक भी करता है तो क्या हानि है। वह राह पर तो है। उसका संभलना सम्भव है। मगर जिसने अब तक काम ही आरम्भ नहीं किया है उसकी संभाल कैसे होगी!

मार्ग चलते जो गिरे, ताहि न लागे दोष।
कहें कबीर बैठा रहे, ता सिर करें कोस॥

कर्म करने से मन पर चोटें लगतीं हैं। ऊँच नीच देखने पड़ते हैं। सोच समझ कर काम करना पड़ता है और धीरे

धीरे उसका हृदय, सुन्दरता, बुद्धि और विवेक का भंडार बन जाता है। एक पत्थर काटने वाला हाथ में हथौड़ा लिये पत्थर गढ़ रहा है। हथौड़े की चोट से चीप पर चीप नीचे गिर रही है। वह अनगढ़ पत्थरों में से रूप निकाल रहा है। रेखायें पैदा कर रहा है। फूल पत्ती बना रहा है। बेलबूटे दिखा रहा है। यह सुन्दरता क्या पत्थर में थी ? यदि होती तो पत्थर पहिले ही से सुन्दर बना हुआ होता। यह सुन्दरता पत्थर काटने वाले के मन में है। वह अपने मन की सुन्दरता को पत्थर में दिखा रहा है। ज्यों-ज्यों वह पत्थर पर चोटें लगाता है त्यों त्यों उसके मन पर भी चोटें पड़ रही हैं। मन के ख्याल को विशेष प्रकार की गति मिल रही है, जो उसके अन्दर है वही बाहर फूट-फूट कर निकल रहा है।

एक वकील है। पेचदार और कठिन मुकद्दमा उसके सामने है। वह चाहता है कि उसका मवक्किल सफल हो जाये। कानून की पकड़ में न आये। वह सोचता है, विचारता है, अपने विचार को ऐंठता है, मरोड़ता है। बात समझ में आ गई। कानून की धाराओं का अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार कर दिया। मवक्किल सफल हो गया। अन्याय नहीं होने पाया। यह न्याय कहाँ था ! वकील के मन में ही तो था।

एक वैद्य है। कोई दुस्साध्य रोगी उसके पास आया हुआ है, जिसने समस्त प्रसिद्ध दवाओं का प्रयोग कर देखा है। रोग नहीं जाता। वैद्य से प्रार्थना है कि कैसे ही वह निरोग हो। वैद्य सोच रहा है। उसके हालात पूछ रहा है। तरह तरह के प्रश्न उसके मन से निकलते हैं। इन प्रश्नों की जड़ में वह उस नुक्ते को समझना चाहता है जिससे रोगी का स्वास्थ्य बिगड़ गया है। उसके हालात की जानकारी प्राप्त कर ली। अब वह समझ गया कि क्यों वह अपना स्वास्थ्य खो

बैठा है। बात समझ में आ गई। चतुराई और सोच-समझ के साथ इलाज किया गया। अब रोगी को आराम है। इस स्वास्थ्य और आराम की समझ कहाँ थी! वैद्य के मन ही में तो थी। उसने मन से निकालकर अपने मन के प्रतिबिम्ब को रोगी पर डाला और वह भला चंगा हो गया।

स्वास्थ्य, न्याय और सुन्दरता क्या वस्तु हैं? इन्हीं को ईश्वर बोलते हैं। यदि ईश्वर सुन्दरता, न्याय और स्वास्थ्य नहीं है तो तुम बतादो कि वह क्या वस्तु है। यह हृदय के अन्दर विचार रूप में स्थित रहता है। इसलिये जो लोग कर्म करते हैं वह अनजाने उसके समीप हो रहे हैं। माना कि उसके जानने, उसके समझने और उसके साक्षात्कार के ढंग अलग अलग हैं। किन्तु मुख्य अभिप्राय तो सबका एक ही हैं।

कर्म करने दो। कर्म से स्वयं मन की शिक्षा और गढ़त होती है। जिस ससय काम के सिलसिले में कोई सुन्दर विचार मन में उत्पन्न होगा, वह अपने साथियों अर्थात् वैसे ही विचार वालों को काम करने वाले की ओर खींच लायेगा। उस मेल मिलाप से शक्तिशाली बन कर वह अपनी शक्ति का विचित्र खेल इस प्रकार से दिखायेगा कि सारी दुनियाँ देख कर चकित रह जायगी और मनुष्य सुगमता से विचारवान और उच्च दृष्टि वाला हो जायगा।

पहाड़ के आँचल में सैकड़ों मन बर्फ जमी हुई पड़ी है। वह सीमित है, स्थूल है और परिपूर्ण है। सूर्य की किरणें उस पर पड़ने दो। वे नोकदार बन कर अपनी गर्म नोंकों से उसको बेध रही हैं। बर्फ का रूप बदल गया। वह द्रव बन कर अपने सीमित स्थान को छोड़ बैठी और बहती हुई गंगा के रूप में गंगोत्री से निकल कर पहाड़ के पत्थरों से टकराती हुई और घाटियों से खेलती हुई बाहर की ओर बह रही है। इस

को धार देखते देखते हिमालय से लेकर महासागर तक फैल गई। एक बड़ी नदी बह रही है जिसके किनारों पर बड़े बड़े नगर और कस्बे बसे हुये हैं। सम्भव है कि बर्फ ने सौ पचास मील का क्षेत्र घेर रक्खा हो मगर अब बिस्तार की दृष्टि से उस ने पंद्रह सौ मील की यात्रा की है। हिमालय से लेकर महासागर तक फैलाव है। इसमें सैकड़ों या हजारों नदी नाले आ आ कर मिल गये। करोड़ों जीव जन्तु इसमें निवास करते हैं। असंख्य पशु पक्षी और मनुष्य पानी की प्यास बुझाते हैं। लाखों बीघा खेत और बाग बगीचे सींचे जाते हैं। जहाँ ऊसर और बंजर थे अब उसके सहारे हरी भरी खेती लहलहा रही है। जहाँ कोई वस्तु पैदा नहीं होती थी वहाँ लाखों करोड़ों मन अन्न फल फूल पैदा होते हैं। इस गंगा से कितनी नहरों की शाखायें निकली हैं जो हजारों मील भूमि की सिंचाई करती हैं। कितने ही लोग इसका जल पीते हैं। कितने ही उसमें स्नान करते हैं। यदि तुम में शक्ति है तो गंगा से लाभ पहुँचने का हिसाब करो। हमारी बुद्धि तो उसके उपकार का अनुमान भी नहीं लगा सकती। यह गंगा पहिले क्या थी! मिला जुली बर्फ का एक तूँदा थी। मूढ़ थी, मूढ़ अवस्था में थी मगर कर्म के उपलक्ष में वह क्या से क्या बन गई। अब इसमें सीमित पने की कमी कहाँ है। वह पतितपावनी हो कर सबके पापों को धोती, सबके शरीरों और वस्त्रों का मैल उतारती हुई समुद्र की ओर बही जारही है। और उससे मिल कर एक हो रही है। समुद्र में गंगा की खोज करो तो इसका पता तक न मिलेगा। इसी प्रकार मूढ़ जीव कर्म करने के सिलसिले में फैलते हैं। हजारों और लाखों का उपकार करते हुये मन और विचार की क्षुद्रता को छोड़ते हुये पक्षपात और कट्टरपने की आदत को तिलांजलि देते हुये सर्व व्यापक हो जाते हैं और उस एक से मिलकर

एक हो जाते हैं। जो सबका आदर्श और सबका इष्ट पद है और वह इससे मिल कर इस तरह अपने अहंकार और सीमित व्यक्तित्व को लय कर देते हैं जिस तरह गंगा समुद्र में जाकर अपने आप को खो देती है।

मूढ़ अवस्था वाले आदमियों को कर्म करने दो। कर्म के सिलसिले में इनके विचारों को फैलने दो। कर्म करते हुये इन को अपना और दूसरों का उपकार करने दो, क्योंकि वह स्वाभाविक रूप से कर्म के अधिकारी हैं। कर्म के स्थल में कर्म करना बुरा नहीं है किन्तु कर्म ही मुख्य वस्तु है। इस प्रकार मूढ़ जीव कर्म का सहारा या गति पाकर अपने फैलाव का प्रयत्न कर लेते हैं।

हमने ऊपर गंगा के उदाहरण में तुम को बताया है कि जिस समय गंगा गंगोत्री से बहती है उसमें हजारों की संख्या में नदी और नाले आकर मिल जाते हैं। ठीक इसी तरह मूढ़ जीव जब कर्म करने लगते हैं तो इनके विचार में क्षोभ आता है। जैसा उनका ख्याल है उसके अनुसार हजारों लाखों और करोड़ों वैसे ही ख्याल उनको उत्तराधिकार से मिलते हैं। इन का अधिकार संस्कार बढ़ जाता है और इनमें योग्यता और ग्रहण शक्ति आजाती है। सारी दुनियाँ ख्यालों से भरी पड़ी है। यहाँ ऋषि अपनी विचारधारा छोड़ गये हैं उन सब के शब्दों की धुनि आकाश मण्डल में गूँज रही है। सारा आकाश इनसे परिपूर्ण है यह विचार चील की तरह मंडलाते रहते हैं और मंडलाते हुये अपने अधिकार की खोज में रहते हैं। जब कोई अधिकारी इनको मिल जाता है तो उसके हृदय में यह समा जाते हैं और उसके अमल और विद्या बुद्धि में नये नये रूप बदलते हुये अपना खेल दिखलाने लगते हैं। जिसके मन को गति मिल गई है, जिसके मन की गढ़त अच्छी तरह हो चुकी

है वह इनको प्राप्त करके गद् गद् और कृत्य कृत्य हो जाता है। दूसरों की जो अधिकारी नहीं हैं इनसे लाभ नहीं पहुँच सकता तुम सोचो ! एक व्यक्ति वास्तव में सूफी प्रकृति का है। उसने किसी सुफी की बाणी पढ़ी। उस बाणी से मन की थिरताई हुई। बचन की धार मुँह से निकली। जो विचारवान थे सब लोट पोट हो गये, निमग्न हो गये मगर अन्य लोग कोरे के कोरे ही रहे। कारण यह था कि वह इसके पात्र नहीं थे। अन्यथा इनकी भी बेसुधी की अवस्था होती। सारी बात मन देने की है। जो मन देता है ख्याल उसके मन में समा जाता है। जो मन नहीं देता, ख्याल भी अपना मन उसको (स्थान) नहीं देता। जो मन देगा वही मन लेगा।

लोगों को आश्चर्य होगा कि किस तरह कर्म करते हुये आदमी विचारों का उत्तराधिकारी हो जाता है। यह बात साधारण सी है। जो लोग सोच-विचार करते हैं उनको समझाना कठिन नहीं है मगर जिनको सोच विचार करने की आदत नहीं है इनको हम सोचने-विचारने की आदत सिखाते हैं। देखो एक आदमी किसी विशेष विचार में चिन्तित है। चुपचाप बैठा हुआ सोच रहा है कि क्या काम करें जिससे इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाय। पल, क्षण, घंटों बीत गये। वह हर पहलू से सोचता-विचारता है। तरह-तरह के विचार मँडलाते हुये उसके मन के चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं और वह अन्दर ही अन्दर सब की कांट-छाँट कर रहा है। यह बात मेरे मतलब की नहीं है। यह विचार इतना लाभदायक नहीं है। अन्त में एक अन्य विचार सामने आया। वह उसके आते ही प्रसन्न हो गया। बस ! बस !! यही काम की वस्तु है और इसी के करने से मेरा लाभ होगा। उसने इसे अपने मन में रख लिया और शेष को अलग कर दिया। जो अधिकार

की वस्तु थी हाथ आ गई और उसकी सफलता में सहायक बनो। अब सोचो! ख्याल मँडलाता हुआ उसके सामने आया कि नहीं। यदि हमारा कहना असत्य हो तो तुम इसको न मानो। यदि ठीक है तो स्वयं इसके ग्रहण करने का प्रयत्न करो, ताकि तुमको भी इसी प्रकार के विचारों से लाभ उठाने का अवसर हाथ आये।

तुम्हारा मन कुछ इस जन्म के संस्कारों के मसाले से तो नहीं बना है किन्तु वह हजारों और करोड़ों वर्ष के प्रभावों को अपने साथ लाया है। सम्भव है कुछ इसके अन्दर हो। सब कुछ इसके अन्दर होने की सम्भावना भी है क्योंकि यह मन भी अपने आप एक अथाह सागर है जिसकी गहराई का पता पाना असम्भव है। दूसरी बात यह भी सम्भव है कि एक स्वभाव और एकसी चित्त वृति वाले कई आदमी किसी खास ख्याल को सोच रहे हैं: उनके मन आकाश से विचारों की धारें निकलकर महा आकाश में फैलती हुई इस मन आकाश की ओर झुकेंगी जो सोचने वालों के मन के अनुकूल और समानता रखने वाली होंगी। उदाहरणार्थ एक विशेष पेशे के विभिन्न लोग अपनी उन्नति के साधन सोच रहे थे। जो बात एक के मन में आती है उसका प्रतिबिम्ब दूसरों के मन पर भी पहुंचता है और एक साथ ही सब के सब वही काम करने लग जाते हैं। यहाँ सवाल अनुकूलता और समानता का है। एक सितार के सारे तारों को मिला कर एक तार को छेड़ो। सब तार आवाज देने लगेंगे क्योंकि वह वास्तव में एक ही समय पर स्थित किये गये हैं। यदि एक समय पर स्थित न हो तो कभी किसी दशा में भी विशेष तार को छेड़ने पर आवाज न देंगे। इस प्रकार बहुत से सितार सुर मिलाकर एक कमरे में खूंटियों पर टाँग दो। एक सितार को लेकर बजाने लग

जाओ। सम्भव है वह सब बजाने की आवाज की धार को पकड़कर यों ही अपने आप आवाज देने लग जायेंगें। दुनियाँ में हर जगह ऐसा ही होता है। जो इस भेद को जानते हैं वह इससे लाभ उठाते हैं। तुम यह कभी न समझोगे कि जो बातें तुम सोचा करते हो वह दूसरों तक न पहुंचेंगी। ऐसा कभी सम्भव नहीं है। विचार पानी से भी अधिक द्रव, वायु से भी अधिक सूक्ष्म, और बिजली से भी अधिक तेज है। वह क्षण भर में हजारों कोसों की दूरी तै कर आता है। और जो-जो अधिकारी मिलते हैं वह सब के मन को संदेश पहुंचा आता है। इस देश में एक समय ऐसा बीता है जब लोग हजारों मील की दूरी पर रहते हुये भी विचार की सहायता से आपस में बातचीत किया करते थे। अब इस समय में भी टैलीफून और वायरलेस टैलीग्राफी (बेतार के तार) से भी यही काम लिया जा रहा है। तुम समझते हो कि बात को हृदयाङ्गम करने का साधन केवल जिभ्या है। नहीं, नहीं आखें भी वहीं काम दे सकती हैं और मन का तो कहना ही क्या है। वह जिस जोर के साथ चाहे अपने अन्दर से विचारों की धारों को निकाल निकालकर दूसरे तक पहुँचा सकता है। गुरु और चेले अब भी मौजूद हैं जो मन की सहायता से एक दूसरे का हाल जान लेते हैं।

सत्त पुरुष सम गुरु को जान।
बिन जिभ्या कहे बचन सुजान॥

कर्म करने वाले मनुष्य अधिकारी बनकर जाने और अनजाने दूसरों के विचारों से लाभान्वित होते हैं और मानसिक भावों को शक्ति देते हुये धीरे-धीरे साँसारिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। फिर निःस्वार्थ बनकर निःस्वार्थ सेवा और निष्काम, कर्म के प्रताप से उस आदर्श को पूर्ण कर लेते हैं जो ज्ञान और

भक्ति का आदर्श है। इसलिये कर्म करने वालों का दर्जा कभी नीचा नहीं रह सकता। जहाँ उसके विचारों में उच्चता आ गई और मन का फैलाव होने लगा, वह किसी दशा में भी नीचे के मंडल में ठहर नहीं सकता है।

तृतीय प्रकरण

कर्म का पंथ

एकहि को सुरझाइये, सब सुरझाये जाय।
दोई मुख से बोलते, घना तमाँचा खाय॥
भौंरा बिलसा बाग में, बहु फूलन की बास।
जीव बिलसते विषय में, अन्तहु चले निरास॥
मूल गहे ते काम है, तू मत भरम भुलाय।
यह मन सायर समुद्र है, कबहूँ बहे मत जाय॥
भँवरजाल एक जाल है, बूड़े जीव अनेक।
कहैं कबीर वह बाँचिहैं, जिनके हृदय विवेक॥

पंथ एक विस्तृत शब्द है। कर्म का पंथ और है, उपासना का और है। और ज्ञान का और है। बन्धन और मोक्ष का सवाल केवल कर्म के पंथ में है ज्ञान और भक्ति दोनों में बन्ध और मोक्ष नहीं है। लोगों को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा कि भक्ति और ज्ञान में मोक्ष नहीं है। ज्ञान तो बड़ी ऊँची वस्तु है। वह बन्ध और मोक्ष के परे की वस्तु है मगर भक्ति के सम्प्रदाय वालों में से लगभग सबने मुक्ति के विभिन्न रूप वर्णन किये हैं। वह भक्ति जिसमें मुक्ति का वर्णन आता है, रूप से मिली हुई है, अन्यथा प्रेम में बन्धन और मोक्ष का सवाल नहीं आता। प्रेमी मुक्ति नहीं माँगता। वह केवल प्रेम

और भक्ति माँगता है जो वास्तव में उसका अपना स्वरूप है। प्रेम के मार्ग में लेना देना नहीं है। वह खरीदने और बेचने का सौदा नहीं है। उसमें तो जान तक प्रीतम के नाम पर निछावर करदी जाती है। यह नहीं होता कि ईश्वर! तू मुझे अमुक वस्तु दे, मैं तेरा व्रत रक्खूँगा। तू मेरी अमुक इच्छा पूरी कर, मैं तुझको भेंट चढ़ाऊँगा।

कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम-रोम में रम रहा, और अमल क्या खाय॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय॥

मुक्ति और बन्धन का सवाल कर्म में आता है। जीव अपने कर्मों के बन्धन में बँधे हुये चिल्ला रहे हैं। उससे बचने का छुटकारा चाहते हैं। उससे बचने का उपाय सोचते हैं। एक उपाय असफल होता है तब दूसरे से सम्बन्ध पैदा करते हैं और इसी उधेड़ बुन में लगे रहते हैं। कर्म की मुक्ति भी अस्थायी मुक्ति है, जो नित्य नहीं है क्योंकि वह कर्म से प्राप्त की गई है। कर्म कैसा ही लम्बा चौड़ा और बड़ा क्यों न हो, फिर भी उसकी सीमा होती है। एक भूखे मजदूर ने मकान के निर्माण में काम किया। मकान बन गया। उसको मजदूरी मिल गई। उसने खाया पीया। जब मिली हुई मजदूरी खर्च हो गई तब फिर उसको दूसरी मजदूरी करनी पड़ी। इसी प्रकार अच्छे कर्म करते हुए, यज्ञ, हवन, जप तप, योग से सम्बन्ध पैदा करते हुए जीव पितृया न पन्थ से होता हुआ चन्द्रलोक को जाता है। वहाँ का सुख भोगकर फिर नीचे गिरता है। इसका क्रम उस समय तक बराबर चालू रहता है जब तक उसका कर्म निष्काम नहीं हो जाता। भक्ति का मार्ग देवयान पन्थ से होकर गया है। जीव सांसारिक जीवन

समाप्त करके सूर्य लोक में जाता है और फिर वहाँ हंसों से मिलकर आगे की ओर चलता है। पीछे हटकर नहीं आता। ज्ञान में तो आने जाने का सवाल ही नहीं है। यह कार्य उपासना और ज्ञान की पृथक पृथक स्थिति हैं।

दुनियाँ में इस समय जितने मजहब फैले हुए हैं, वह किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म की बिगड़ी हुई अक्सी सूरतें हैं। हम यह नहीं कहते कि इस प्रकार की सचाई हिन्दुओं ही से विशेष रूप से सम्बन्धित है। सचाई तो हजारों के हृदय में है मगर जहाँ तक विचार जाता है इस भूमण्डल में आत्मिक ज्ञान के दृष्टिकोण से भारतवर्ष समस्त देश देशान्तरों का शिरोमणि रहा है। जहाँ तक प्रतीत होता है पहिले मनुष्य इसी जगह पैदा हुए और यहाँ पैदा होकर वह देश देश में फैल गये। इस पवित्र भूमि की जलवायु में धार्मिक ख़मीर है। अतः ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे धार्मिक ख्याल की पूर्ति यहां ही हुई। समस्त धर्मों के धार्मिक विचार यहाँ ही से मंगनी लिये गये हैं। जांच पड़ताल का क्षेत्र काफी विस्तृत है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप अधिकार है कि वह अपने ढंग पर यदि चाहे तो जाँच करके इस परिणाम पर पहुँचे या न पहुँचे। अवतार इस देश में प्रगट हुए। तीर्थंकरों का क्रम यहां ही से चला। जैन यहां ही पैदा हुए। बुद्धों का प्राकट्य इस देश में हुआ और संतों ने इसी जगह अपनी विशुद्ध आत्मिक शिक्षा के अधिकारी पाये क्योंकि धर्म इस देश का गुण है। हम कभी भूलकर भी यह नहीं कहते और न दावा करते हैं कि अन्य मजहब या धर्म सचाई से रहित हैं। इनमें भी अपने दर्जे के अनुसार सचाई है क्योंकि सचाई ही सब का आधार है। बिना सचाई के कोई वस्तु रह नहीं सकती। अतः सब में सचाई है मगर सचाई का प्राकट्य, इस प्राकट्य का

बढ़ना और उसकी पूर्ति जिस प्रकार यहाँ हुई, होती है या होगी और जिस विशाल भाव और खुले हृदय से यहाँ उसके प्रचार का सामान मिलता है वह दूसरी जगह इस बहुतायत के साथ दिखाई नहीं देता।

हिन्दू धर्म का विभाजन और पृथकता कर्म, उपासना और ज्ञान पर की गई है और इन ही तीनों के अन्तर्गत समस्त धर्मों की उत्पत्ति की सम्भावना है। इन तीनों के परे संतों का चौथा पद है। इन तीनों शाखों के अधिष्ठाता तीन देवता हैं; क्योंकि बिना देवता के किसी का अस्तित्व नहीं हो सकता है। उनके नाम हैं, रूप हैं और इनके स्थान भी हैं और यह नाम रूप और स्थान के धनी हैं।

भक्ति और उपासना के अधिष्ठाता विष्णु हैं। ज्ञान के अधिष्ठाता शिव हैं और कर्म के मुखिया ब्रह्मा हैं। विष्णु क्षीर सागर में शेषनाग की शैया पर लक्ष्मी के साथ विराजमान हैं। यह सिर है। सागर क्रम सृष्टि में सबसे ऊँचा स्थान है। सारी सूक्ष्मता और गुणों के रत्नों का भंडार है। शिव कैलाश के शिखर पर सर्प और बिच्छू लपेटे पार्वती के साथ विराजमान हैं। पहाड़ सृष्टि में सबसे नीचा स्थान है। ब्रह्मा मध्य में सावित्री के साथ चार वेद हाथ में लिये हुए निवास करते हैं। सम्भव है तुम अपनी गलती से समुद्र को नीचा और पहाड़ को ऊँचा समझते हो क्योंकि आज कल ऊँचाई और निचाई की माप समुद्र की अपेक्षा से की जाती है। किन्तु यदि थोड़ा सा भी ध्यान दोगे तो सरलता से समझ जाओगे कि हम जो कुछ कह रहे हैं वह गलत नहीं है किन्तु सच है। समुद्र सिर है। बीच का दर्जा पेट और बीच के अंग की हैसियत रखता है, जिसमें अपेक्षाकृत आकाश है। पहाड़ पाँव हैं और स्थूल सृष्टि की नींव है। स्थूल जगत में वह सबसे नीचे है।

सत, रज, तम—विष्णु सत है। सत में प्रकाश और आनन्द है। ब्रह्मा रज है। रज में खेंचतान, सुख दुख, सोच फिक्र है। शिव तम है जिसमें स्वतन्त्र अस्तित्व है और कुछ नहीं है। इसी स्वतन्त्र अस्तित्व को निज स्वरूप कहते हैं।

न सत में क्रिया शक्ति है और न तम में क्रिया शक्ति है। इन दोनों के बीच जो क्रिया शक्ति है वह रज है। जो वास्तव में दोनों गुणों के बीच गति देने वाली शक्ति की हैसियत में स्थित होकर अपना कार्य करती है। यदि रज न हो तो क्रिया शक्ति का अभाव रहे।

अब थोड़ा सोचो कि विष्णु में और शिव में बन्ध और मोक्ष का प्रश्न ही नहीं हो सकता। बन्ध और मोक्ष का प्रश्न केवल बीच की दशा में सम्भव है और समस्त व्यवहार, पूजा पाठ, करना धरना उसके आधीन है। विष्णु प्रेम है, आनन्द की लय अवस्था है। प्रेम के मजहब में बन्धन और मोक्ष कैसा! शिव ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान में करना धरना कैसा! करना धरना जो है वह रज शक्ति से सम्बन्धित है। इसी कारण से इसको कर्म का मार्ग कहा जाता है। जितने धार्मिक और सांसारिक सम्बन्ध हैं, सब का सम्बन्ध इसके साथ है। इसी में उत्साह, इसी में इच्छा और आशायें हैं। इसी में भाव और विचार हैं। सब का होना इसी में है।

जब तक कामना और वासना का तनिक भी मन में प्रभाव रहता है तब तक उन्नति अवनति तथा चढ़ना और उतरना होता रहता है। जब इनका क्रम समाप्त हो जाता है तब करने धरने की आवश्यकता शेष नहीं रहती। जो कर्म के अधिकारी हैं, वह किसी न किसी रूप में ब्रह्मा के सच्चे पुत्र बने रहते हैं और कामनाओं को साथ लिये हुए कर्म करते रहते हैं; किन्तु जीवन के बढ़ने के साथ साथ जब समस्त तजुर्बों का दर्जा

समाप्त हो जाता है उस समय जीव को ब्रह्मा के लोक से निकलने का अवसर हाथ आ जाता है। अब यह दूसरी बात रही कि वह कहाँ तक उस अवसर से लाभ उठा सकता है या उठा लेता है। फिर उस समय या तो इस क्रम में उच्च दृष्टि वाला होकर विष्णु को इष्ट बना लेता है या शिव को। तब बन्धन की जंजीर टूट जाती है।

जिनमें ब्रह्मा का खमीर है वह काल और कर्म के ऋणी हैं। उनको यह ऋण किसी न किसी रूप में देना ही पड़ता है और देना ही पड़ेगा। उनको भूलकर भी व्याकुल न होना चाहिए, किन्तु कर्म करते हुए वह स्वयं समझ बूझ वाले बनें। और फिर अपने आप असलियत को समझ सकेंगे। वह आप ही आप किसी न किसी रूप में अपना रास्ता ढूँढ़ने के योग्य बन सकेंगे। यदि इनको ज्ञान और भक्ति के गोरख धन्धे में फँसाया गया तो उनको अपना काम बनाने में देर लगेगी और व्यर्थ की परेशानी होगी। कर्म के जगत में कर्म करना आवश्यक है ताकि ऋण के भार से उऋण हो जाय और सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले। इस लोक में बदले का कानून पग पग पर अपना अधिकार जमाये हुए है। प्रत्येक व्यक्ति यहाँ ऋणी और ऋणदाता की हैसियत रखता है। देना लेना साथ साथ चलता है। सूर्य यदि अपनी किरणों से हमको प्रकाश और गर्मी देता है तो साथ ही साथ हमारे प्रकाश और गर्मी को सोखता भी रहता है। वृक्ष पृथ्वी की गोद से उठकर ऊपर आते हैं। पृथ्वी के अंशों को खाते हैं और फिर अपने समय पर पृथ्वी का अंश बन जाते हैं। तुम किसी शिक्षक से पढ़ते हो तो किसी न किसी रूप में इसका बदला भी देते हो क्योंकि काल भगवान का नियम ही ऐसा है। काल और महाकाल इसी का नाम है। जिसको तुम ब्रह्म कहते

हो वह हम में है और हम उसमें हैं। हम उसमें रहते हुए, उससे परवरिश पाते हैं। समय आने पर वह हमको अपने में मिला लेता है और हम उसी में लय हो जाते हैं। वहाँ पर हर एक आदमी किसी न किसी तरह ऋणी है क्योंकि जो व्यक्ति राजा के राज में रहता है उसको उसका टैक्स देना पड़ता है। राजा तुम से लेकर तुम को ही देता है। उसके देने का ढंग दूसरा है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध एक दूसरे पर आधारित है। इसी प्रकार काल के राज का राजा काल पुरुष है, मगर इसकी समझ संतों के सत्संग के बिना कठिनता से आती है। इन सब से ऊँचा एक लोक है जो असली आत्मा का निवास स्थान है और केन्द्र है। वहाँ निस्संदेह लेने देने का सवाल नहीं है। यह विशुद्ध आत्मा का लोक है।

चतुर्थ प्रकरण

कर्म और विभिन्न दशायें

लेना है सो जल्द ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग-जुग चले, आवा गवन बंधान॥

कर्म में सारे गुण छिपे हैं क्योंकि कर्म की सम्भावना केवल ऐसे लोक में है जहाँ भिन्नता या अनेकता है क्योंकि विभिन्न रूप, भिन्न-भिन्न दशायें, भिन्न भिन्न दृश्य मन के आकर्षण के हेतु होकर इनके काम में व्यस्त और एकाग्र चित्त करने का प्रबन्ध करते हैं, मनुष्य का चित्त स्वभाव से ही नवीनता प्रिय बनकर आया है क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार के प्रभाव सूक्ष्म आकृतियों के रूप में हृदय में बैठकर तरह-तरह के दृश्य देखने से उभरने के इच्छुक होते हैं और काम करने की गति को उभार मिला करता है। नई-नई उमंग और नये-

नये उत्साह पैदा होते हैं। कुछ समय के लिये वह इनसे मिलकर उनमें प्रसन्नता और दिल बहलाव ढूढ़ता हुआ इन्हीं को अपनी उन्नति का साधन बना लेता है। फिर उसकी दृष्टि में विशालता आजाती है, जिस समय वह प्रकृति की विचित्रता को देखता है। अचंभित हो जाता है। उसकी विलक्षणता हृदय में समा जाती है और क्रमशः यह उसकी उन्नति का कारण बन जाती है और उसके हृदय के भावों को एकाग्र करने में सहायक सिद्ध होती है। यहाँ एक दृष्टान्त से इस समझ बूझ की व्याख्या करदी जाती है ताकि बात भली प्रकार समझ में आजाय।

रात का समय था। नींद नहीं आती थी। लड़कपन का समय था। हमारा छोटा भाई सूरज नारायन सिंह पैदा नहीं हुआ था। हम अपनी माँ के साथ एक ही खाट पर सोये हुये थे। बच्चों को किस्सा कहानी सुनने के स्वभाव से ही लालसा होती है। हमने माँ से कहा कि अम्मा! कोई कहानी कहो जो बढ़ चढ़ कर हो और चित्त सुनकर प्रसन्न हो जाय। वह बोली – सुनो।

किसी चमार की लड़की थी। जब उसके विवाह का समय आया, मां-बाप ने चाहा कि किसी के साथ उसका सम्बन्ध कर दिया जाय। लड़की समझदार थी। माँ-बाप से बोली – मैं उसके साथ विवाह करूँगी जो सब से बड़ा है। यदि वह बड़ा नहीं है तो कम से कम मुझसे बुद्धि और विवेक में बढ़ चढ़ कर हो ताकि मुझ में उसकी श्रद्धा रहे और मैं उसका आदर मान कर सकूँ। बाप हँसा। कहने लगा। सब पुरुष स्त्रियों से अधिक बुद्धिमान होते हैं। ईश्वर ने पुरुषों को स्त्रियों से अधिक श्रेष्ठ बनाया है। लड़की हँसी। कहने लगी—नहीं-नहीं! यह बात सम्भव नहीं है। बहुत सी स्त्रियां ऐसी हैं कि

समझबूझ और बल में पुरुषों से बड़ी-चढ़ी होती हैं। जहाँ स्त्री पुरुष से अधिक विवेक बुद्धि वाली होती है वहां वह उसका आदर नहीं करती। परिणाम यह होता है कि दोनों में दंगम-दंगा होती रहती है और घर में उत्पात मचा रहता है। मुझे न ऐसे घर में रहना प्रिय है और न ऐसे पुरुष के साथ विवाह स्वीकार है। बाप ने कहा कि तू गँवार है। देख तेरी मां का मेरे साथ विवाह हुआ। फिर हम लोग भी तो किसी न किसी तरह मिल जुलकर रहते हैं कि नहीं? लड़की ने कहा कि यह बात नहीं है। मेरी माता तुमसे अधिक बलवान और बुद्धिमान है। तुमसे उससे नहीं बनती और नित्य प्रति की लड़ाई से घर नर्क बना हुआ है। इसी बात को देखकर मैंने मन में ठान ली है कि किसी अच्छे पुरुष को चुनकर विवाह करूँगी। बाप ने कहा कि तेरी माँ चिड़चिड़े स्वभाव की है। यह कारण है कि वह मुझको कुछ नहीं समझती, किन्तु फिर भी हम काम काज करते ही रहते हैं।

लड़की चतुर थी। उसने कहा कि तुम मेरी माँ से कम-जोर हो। बाप ने पूछा कि तूने इस बात का पता कैसे पाया। वह बोली कि पड़ौस की स्त्रियाँ ऐसा कहती हैं कि यदि स्त्री पुरुष से अधिक बलवान होती है तो घर में लड़के ही लड़के पैदा होते हैं। यदि पुरुष बलवान है तो लड़कियाँ ही लड़कियाँ पैदा होती हैं। यदि दोनों बराबर हों तो संतान दोषपूर्ण और नपुंसक होती है क्योंकि जिसका पल्ला कमजोर होता है। प्रकृति माता सदा उसकी तरफदारी करती है। देखो यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। तुम्हारे घर में सिवाय मेरे सब लड़के ही लड़के हैं। पाँच सात भाइयों के बीच मैं ही एक बहिन हूँ। क्या यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है कि तुम मेरी माता से कमजोर हो। बाप हँसा। यदि तेरी माँ मुझसे अधिक बलवान होती तो

तू कैसे पैदा होती ? तेरी बात तेरी ही दलील से कट जाती है। लड़की ने कहा—नहीं, नहीं, कोई ऐसा समय आ गया होगा कि रोग या किसी अन्य कारण से किसी समय के लिये मेरी माँ तुमसे कमजोर हो गई होगी, इसलिये मैं पैदा हो गई अन्यथा मेरी जगह लड़का ही पैदा होता। वैसे शरीर के लिहाज से भी पता लगता है कि आप कमजोर हैं और मेरी माँ बलवान है! बाप निरुत्तर हो गया। उसने कितना ही समझाया मगर लड़की इसकी बातों में नहीं आई और विवाह करने से इन्कार कर दिया।

कुछ समय के पश्चात् इस गाँव का राजा उधर से निकला। साधारणतया चमार लोग गाँव के बाहर रहते हैं। लड़की ने देखा कि सब लोग राजा का आदर मान करते हैं और झुक झुककर नमस्कार करते हैं। इसने मन में सोचा कि यह सबसे बड़ा आदमी हैं। वह राजा के जुलूस के साथ हुई और इस चिन्ता में हुई कि कब अवसर मिले और कब मैं इससे विवाह की बात कहूँ। सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से यह अवसर उसके हाथ नहीं आया। जुलूस आगे की ओर बढ़ गया। लड़की भी साथ ही साथ थी। आगे की ओर से एक ब्राह्मण पंडित आ रहा था। राजा ने उसको नमस्कार किया। लड़की ने समझा कि यह राजा से बड़ा है क्योंकि यदि वह बड़ा न होता तो राजा उसको नमस्कार क्यों करता। अतः राजा को छोड़कर उसी ब्राह्मण से विवाह करना चाहा। इसने जुलूस का साथ छोड़ दिया और ब्राह्मण के साथ होली। जब ब्राह्मण ने देखा कि एक लड़की उसके पीछे-पीछे आरही है तो उसने पूछा कि देवी! तू क्या चाहती है। वह बोली कि मैंने प्रण किया है कि जो सबमें बड़ा होगा, मैं उसी के साथ विवाह करूँगी। तुम सबसे बड़े हो। तुम से बड़ा कोई नहीं है क्योंकि जब राजा

तुम्हारा मान करता है तो फिर कौन तुमसे बड़ा हो सकता है। ब्राह्मण ने पूछा कि तू ने कैसे जाना कि मैं राजा से बड़ा हूं। वह बोली कि तू बड़ा न होता तो राजा तुझ को नमस्कार क्यों करता। ब्राह्मण चुप हो गया और वह आगे की ओर बढ़ा। लड़की उसके साथ थी। वह एक मन्दिर में गया। ब्राह्मण ने मन्दिर की मूर्त्ति को सिर झुकाया और उसकी स्तुति गाई। लड़की ने समझा कि मन्दिर का देवता ब्राह्मण से भी बड़ा है। अतः उसके साथ विवाह करना चाहा। इससे ब्राह्मण को छोड़ दिया और मन्दिर के निकट एक स्थान पर बैठ गई। ब्राह्मण ने पूछा कि अब तू मेरे साथ क्यों नहीं चलती। वह बोली कि मुझे ज्ञात हो गया कि देवता तुमसे भी बड़ा है अतः मैं इसी के साथ विवाह करूँगी। तुम जाओ। अपना रास्ता लो। मैंने पक्का प्रण कर लिया है कि जो कोई सबसे बड़ा होगा मैं उसी को अपना पति बनाऊँगी। ब्राह्मण हँसता हुआ अपने रास्ते चला गया। लड़की मन्दिर में बैठ गई।

थोड़ी देर के पश्चात् मन्दिर की ओर एक कुत्ता आया और उसने टांग उठाकर मूर्ति पर पेशाब कर दिया। लड़की ने समझा कि यह कुत्ता देवता से भी बढ़कर है। वह उसके पीछे होली। कुत्ता आगे-आगे और लड़की पीछे-पीछे। कुछ दूर वह इसी तरह चले गये। गाँव के निकट एक चमार के लड़के ने ढेला उठाकर कुत्ते को मारा और कुत्ता कांय-काँय करता हुआ भाग निकला। लड़की ने सोचा यह सबसे बड़ा है और उसी के साथ विवाह करने का संकल्प कर लिया। संयोग की बात कि वह वही लड़का था जिसके साथ उसका बाप विवाह करना चाहता था। सब लोग बड़े प्रसन्न हुये कि बावली लड़की होश में आ गई। उस लड़के के साथ उसकी शादी करदी गई। लड़की अपने पति की सेवा सुश्रूसा में रहा करती थी, मानो

कि वह उसका ईश्वर है। इसमें संदेह नहीं कि स्त्री और पुरुष दोनों प्रसन्नता से रहते थे। लड़की का रुझान किसी दूसरी ओर था। मगर थोड़े दिन के लिये मन की गति रुक गई थी। एक दिन किसी कारण उनमें अनबन हो गई। लड़की के क्रोध का पारा ऊपर चढ़ गया और सीमा से बाहर चला गया। उसने आव देखा न ताव, डंडा उठाकर खेंच मारा। पुरुष चुपका होकर भाग गया। अब लड़की को सोचने का अवसर मिला। मैंने इसके साथ विवाह क्यों किया। यह तो मुझसे बड़ा नहीं है। मैं इससे बड़ी हूँ क्योंकि यदि यह मुझसे बड़ा होता तो मेरी भी खबर इसी तरह डंडे से ले सकता था जैसे कि मैंने इसकी ली है। इसलिये इसके साथ रहना उचित नहीं है। मैं स्वयं सबसे बड़ी हूं। अतः अपने ही साथ विवाह क्यों न करूँ। वह बेपरवाह (उदासीन) बन गई और अपने मन में अपनी बड़ाई सोचने लगी। उसके जितने दबे हुए संस्कार थे वह धीरे-धीरे उभरने लगे। उसका रुझान अपनी आत्मा के सोच विचार की ओर होता गया और वह लड़की कुछ समय के पश्चात् ज्ञानी बन गई। इसने तत्व को पहिचान लिया। फिर वह विवाह की चिन्ता से स्वतन्त्र होकर शान्ति और आनन्द का जीवन व्यतीत करने लगी। यह कहानी हमारी माँ ने सुनाई थी। कहानी पुरानी है, साधारण है मगर सोचने विचारने के योग्य है। जो कुछ है, सब मनुष्य के हृदय में है।

न देखा वह कहीं जलवा, जो देखा खानये दिल में।
बहुत मसजिद में सिर मारा, बहुत सा ढूँढ़ा बुत खाना॥

देखो! इच्छा के सिलसिले में किस प्रकार क्रमशः मनुष्य का काम बनता है। जिस समय कर्म और इच्छा के क्रम में

दृष्टि ऊँची हो जाती है, मनुष्य अपनी असलियत की ओर झुकता है और जीवन के उद्देश्यों को पूरा कर लेता है। तब दुनिया की स्थिति स्वप्न और ख्याल से अधिक प्रतीत नहीं होती। जो देखा ख्वाब व ख्याल था और जो सुना फरेब और धोखा था। अपने सिवाय क्या था जिससे सम्बन्ध पैदा करते।

कर्म करने वालों को चाहिए कि वह अपने मन के अन्तर में घुस कर तनिक सोचें विचारें कि प्रकृति ने उनको किस विशेष कार्य के लिये योग्य रक्खा है। किस वस्तु की प्रबल इच्छा मन में भरी है। इसी की सूरत शक्ल विचार की आँखों से देखकर उससे सम्बन्ध उत्पन्न करे। एक सिर हजार सौदा का ख्याल छोड़ें। किसी एक विशेष कार्य को दृष्टि के सामने रक्खें और रात दिन व्यस्त रहकर उसकी पूर्ति में लगे रहें। इस बात का जानना कुछ कठिन नहीं है। तनिक सोचने की बात है। इससे तो किसी को इन्कार नहीं है कि हर आदमी के मन में संस्कार और प्रभाव रहते हैं और इन संस्कार और प्रभावों के समूह में कोई प्रबल संस्कार हुआ करता है जिसकी ओर चित्त आकर्षित रहता है। इस बात का पता बचपन की चित्त वृत्ति पर ध्यान देने से भी लगता है, किन्तु यदि आदमी परिस्थितियों का शिकार बनकर उनको भूल जाय तो उसको चाहिए कि सब से अलग थलग एकान्त में बैठकर सोच विचार करने की टेव डाले। इसमें दो चार दिन लग जायेंगे। जब वह एकान्त में बैठेगा, तरह तरह के विचार उठेंगे। वह इनको बन्द न करे किन्तु प्रसन्नता से इनका स्वागत करे और काँट छाँट करते हुए देखे कि किस विशेष काम की ओर उसके चित्त का रुझान है। इसी काम को हाथ में ले और इसमें मन लगावे। उसी से लगाव और सम्बन्ध पैदा करे। किसी के

कहने सुनने पर न जाय. क्योंकि दुनिया के लोगों को क्या पता है कि इसके हृदय में कितनी शक्ति भरी पड़ी है और किस प्रकार का सामान मौजूद है। मनुष्य को मनुष्य केवल बाहरी सजधज, बाहरी दशा और स्थिति देखकर सम्मति दिया करता है; यह तो आदमी आप भी जान सकता है कि उसमें किस प्रकार की योग्यता है और किस काम की उपयुक्तता या योग्यता का सामान उसके अन्दर है। दूसरों को इसकी क्या खबर है। कोई किसी के मन में नहीं घुस सकता और न कोई किसी की योग्यता का अनुमान लगा सकता है। मनुष्य आप अपना मंत्री और सलाहकार है और आप ही अन्तिम निर्णय कर सकता है कि किस काम में उसकी भलाई सम्भव है। दूसरों के आधीन होना बड़ी भारी गलती और कायरपना है। इससे लाभ के बजाय हानि होती है। यदि सिद्धान्त से विपरीत होकर वह भटकने लगता है तो बहक कर कहीं का कहीं चला जाता है। तब काम में देर हो जाती है और सफलता में रुकावटें पैदा हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त हमने ऊपर किसी जगह वर्णन कर दिया है कि आदमी एकान्त में बैठकर सोचने लगता है तो दूसरों के विचार भी जो उसके अपने विचार के सहानुभूति रखने वाले हैं खिंचकर उसकी ओर आकर्षित होते हैं और उसको शक्ति देकर बलवान और शक्तिशाली बना देते हैं और वह काम के योग्य हो जाता है वर्ना नहीं।

अपने चारों ओर दृष्टि डालो। जिस समय किसी वृक्ष का बीज भूमि की तह में दबकर ऊपर निकलने को होता है तो वह बहुत ही कमजोर और पीले रंग का होता है। उसके ऊपर मिट्टी की तह जमी हुई है। बुद्धि नहीं सोच सकती कि इतना दुर्बल पीला अंखुआ पृथ्वी की कठोर तह को चीरकर ऊपर निकल आयेगा मगर हम देखते हैं कि इतना बलहीन होने पर

भी वह भीतर ही भीतर कुरेद करता हुआ ऊपर की ओर रुझान करता है और अपनी नोक से भाले की तरह पृथ्वी की छाती को फाड़ता हुआ ऊपर आ जाता है। यह क्यों ऐसा होता है? क्योंकि वह भूमि के रसायनिक भंडार से शक्तियों को सोख लेता है और माँग लेता है। पृथ्वी इसको भीतर ही भीतर शक्ति देती है क्योंकि इसमें शक्ति लेने और सोख लेने के संस्कार भरे हुए हैं। उसको अधिकार प्राप्त है कि उस शक्ति का उत्तराधिकारी होकर उसको अपने काम में लगाये।

अब देखो वह ऊपर निकल आया। वह दुबला पतला अँखुआ है, जिसको यदि एक तुच्छ कीड़ा भी चाहे तो क्षण भर में मिट्टी में मिला दे। मगर नहीं, निकलने के साथ ही जिस समय उभर कर उसने ऊँचाई की ओर सिर बाहर किया; आकाश मण्डल की शक्ति अपना सामान लेकर उसके सामने खड़ी हो गई। वह उससे भोजन और पालन पोषण का सामान लेता है। बनाव शक्ति, सिंगार शक्ति हाथों में चौर लिये हुए उस थके माँदे यात्री के आराम पहुँचाने के विचार से पंखा झल रही है। वायु चल रही है। जल बरस रहा है। रात के समय उसकी तरी उसको ठंडक देने को हाजिर है। कोंपलों के पत्तों में बेल-बूटे का काम हो रहा है। एक एक पत्ते को देखो किस प्रकार रंगत के साथ प्रकृति का चित्रकार इसका रंग गहरा करता जा रहा है।

शाखायें फूटीं। हरे भरे पत्ते निकल आये। पौदा दो चार गज ऊपर निकल आया। वह मस्ती से अकड़ा हुआ एक स्थान पर खड़ा है। तनिक उसकी सजधज पर दृष्टि डालो। वह अपने यौवन पर है और चारों ओर से इसकी सेवा और स्वागत का प्रबन्ध हो रहा है। वह और भी बढ़ा। अब शाखों के सिरे पर बेल बूटों के काम के साथ कली बन रही हैं। एक खेल है जो

खेल देखने वालों को आश्चर्य में डालता है। कलियाँ चटकीं। फूल खिल गये। भौंरे चारों ओर मँडलाने लगे। सुगन्ध फैली और उसने अपने आसपास के जंगल को सुगन्धमय बना दिया। हम उधर से निकले। उसकी सुगन्ध से प्रफुल्लित हो गये। तुम भी आये और तुम्हारा मस्तिष्क भी सुगन्ध से भर गया। क्यों! क्या यह वही पौदा है जो अपने बचपन में तुच्छ दिखाई देता था? अब इसे देखो कि अब क्या दशा है। अभी तो उसने जीवन के मार्ग में केवल पग रक्खा है। अभी इसे और खेल खेलने दो। दो चार दिन के बाद फूल मुरझाये। फल पैदा हुए और वह पकने पर आये। हजारों लाखों और असंख्य लोगों के भोजन बने। लो देखो! वह तुच्छ पौदा वृक्ष के रूप में विस्तृत मैदान में खड़ा हुआ। हजारों को निमंत्रण दे रहा है कि आओ मेरा हृदय देखो। मेरे फलों को खाओ और यदि धूप की तेजी से व्याकुल हो तो मेरी छाया में आकर आराम लो। असंख्य पक्षी उसकी जड़ और शाखों में घोंसले बनाते हैं। कितने ही कीड़े मकोड़े इसके पत्तों की लपट में आराम खोजते हैं।

दानशीलता का उदाहरण इस वृक्ष से बढ़कर कहाँ मिल सकता है। वह उच्च स्वर से ललकार ललकार कर खुले हृदय से कह रहा है कि ऐ भूखो! आओ तृप्त होकर मेरे फल खालो। यह न समझो कि इन फलों के खा लेने से मुझमें कमी आ जायगी। नहीं, नहीं, तुम गूदे को खालो। गुठलियों को पृथ्वी के अन्दर डाल दो। उनसे मुझ जैसे लाखों वृक्ष उत्पन्न हो जायेंगे और तुमको भूख से छुटकारा मिल जायगा। देखो कर्म के सिलसिले में और प्रबल इच्छा के प्रभाव में इस वृक्ष ने क्या क्या काम किये हैं। उसकी कृपा यहाँ ही तक सीमित नहीं हैं। वह कहता है कि ऐ थके .द राहगीरो! यदि तुम सूर्य

की धूप में घबराये हुए हो तो चिन्ता न करो। यदि तपती हुई रेत की गर्मी से तुम्हारे पाँवों में छाले पड़ गये हैं तो व्याकुल न हो। आओ मैं सूर्य की गर्मी अपने ऊपर लूँगा और तुमको अपनी गोद में आराम दूंगा। न केवल जीवित रहकर जीवन में ही तुम्हारे आराम और सजावट का सहारा बना रहूँगा, किन्तु तुम मुझको काट डालो और मेरे शहतीरों से अपने मकान की छतों को पाटो। मेरी लकड़ियां लेकर जलाओ। मैं जीते जी तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। मरने पर भी तुम्हारे काम की वस्तु बनूँगा। यह कभी विचार न करो कि यह सेवा केवल मेरे अस्तित्व तक ही रहेगी किन्तु मैंने इतने बीज बहुतायत से पैदा कर दिये हैं जो मुझ जैसे लाखों वृक्ष बन बनकर विभिन्न तरीकों में तुम्हारे काम आते रहेंगे। जब तक सृष्टि है तब तक मेरी सेवा का क्रम इसी प्रकार चालू रहेगा। मैं प्रसन्नता से और सच्चे हृदय से बराबर अपना कर्तव्य पालन करता रहूँगा। देखा तुमने? इस सृष्टि में एक अज्ञात और तुच्छ बीज ने कैसे कैसे और क्या क्या काम किये हैं क्योंकि उसमें काम करने की अपनी शक्ति छुपी हुई थी। इसी प्रकार मित्रो! तुम्हारे हृदय में भी शक्तियों का भंडार भरा पड़ा है। तनिक गति देने की आवश्यकता है। फिर जहाँ काम आरम्भ हुआ वह आप अपने हाथ पाँव सँभालता चलेगा। किसी की न सुनो और किसी से कुछ न कहो। किसी से सम्मति मत लो। केवल अपने अन्तर में प्रवेश होकर थोड़ा सा संस्कार दिये हुए बीज को कुरेद दो। इसी प्रकार दुनिया और दुनिया की समस्त शक्तियाँ तुम्हारी हो जायेंगी और तुमको कुछ का कुछ बनाकर छोड़ देंगी। यदि काम से जी चुराते हो जिसके कि प्रकृति ने तुमको योग्य बनाया है तो फिर उसमें किसी और का क्या दोष है। यह दोष तुम्हारा अपना ही है। यदि दोष अपना है तो फिर भुगतो! कोई क्या

करे। किसी का क्या बस है। इसलिये हम तुमसे बार २ कहते हैं कि कर्म करो और कर्म ही के सिलसिले में तुम उन्नति करते हुए उन्नति और अवनति की श्रेणियाँ देखते चलो। कुछ दिनों यों ही काम होता रहे। फिर समय आयेगा। असलियत की समझ बूझ तुम में आ जायगी। असलियत की समझ को लेकर तुम शान्ति के स्थायी जीवन के उत्तराधिकारी हो जाओगे जिसमें न कुछ करना है न धरना है। न जन्मना है न मरना है। न आना है न जाना है और यही इष्ट पद है।

अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धँसा सरूप में, सतगुरु दीनी सैन॥
आप आपको आप पिछानो।
कहा और का नेक न मानो॥

पंचम प्रकरण

कर्म की कठिनाइयां और सफलताओं का रहस्य

कर्म कर्म बहु अन्तरा, कर्म कर्म बहु भाव।
सोई कर्म सराहिये, जो गुरु बतावे दाव॥

जहाँ जीवन है वहाँ कर्म है। जहाँ कर्म है वहाँ प्रयत्न और परिश्रम है। पानी के बुलबुलों को देखो कि किस प्रकार की कुलबुलाहट उनमें मौजूद है। पानी के छोटे छोटे जीवों को देखो कि वह किस तरह हाथापाई करते हुए अपने जीवन की कुरेद का खेल दिखा रहे हैं। तुम जिधर देखोगे, यह कुलबुलाहट और कुरेद हर जगह दिखाई देगी; क्योंकि जीवन का रुझान उन्नति की ओर है। इसकी मौजूदगी में हजारों प्रकार के परिवर्तनों की सम्भावना है। आज कुछ है कल कुछ है परसों कुछ और होगा। यह परिवर्तन होना सम्भव है। जहाँ

परिवर्तन होगा वहाँ घबराहट का रहना अनिवार्य है। इसका उपाय नहीं और इससे निर्वाह नहीं। यह तो प्रकृति का गुण है। जीवन नाम है बढ़ने का। जहाँ बढ़ने का ख्याल है वहां जब पग पड़ेगा, आगे की ओर पड़ेगा। जब पग आगे की ओर पड़ेगा तो उसका अर्थ भी यही है कि पग उठा उठाकर धरा जा रहा है। इसमें परिश्रम करना पड़ता है और परिश्रम का नाम ही बेचैनी है। इसमें शान्ति कहां है। जीवन की प्रारम्भिक और बीच की दशा में हर जगह अशान्ति है। यदि जीवन की तृष्णा है तो शान्ति के सागर में डुबकी मारकर उसके अन्दर से शान्ति के मोती निकालना होगा। वास्तव में शान्ति और अशान्ति दोनों आपेक्षिक शब्द है अन्यथा प्रकृति के नियम के अनुसार यदि काम का क्रम जारी किया जाय और इन दोनों की ओर से आँखें मींच ली जायँ तो सुगमता से काम भी होता रहेगा, और साथ ही घबराहट भी न रहेगी, जिसका साधारण लोग शिकार बने रहते हैं। मगर मन नहीं मानता। हर समय किसी न किसी प्रकार की शिकायत लगी रहती है और एक न एक की बुराई मुँह पर आती रहती है।

इसका कारण यह है कि मन में किसी प्रकार का उच्च आदर्श विराजमान है जिसका दृश्य वह अपने अन्दर देखना चाहता है मगर वह बाहर दिखाई नहीं देता। यह दुखी होता है। तुमको चाहिए कि सहानुभूति के हृदय से सबको अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न करो। उनके प्रभाव को ग्रहण न करो किन्तु उन पर प्रभाव डालो। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद हालत बदल जायगी और जब उच्च दृष्टि हो जायगी तो यह शिकायत आप ही आप मिट जायगी।

इसी प्रकार दूसरों के मन में भी उन्नति का ख्याल समाया हुआ है किन्तु इनको यह ज्ञात नहीं कि किस प्रकार कर्म की

सहायता से अपने हृदय के भावों के प्रकट करने का अवसर ढूँढ़ा जाय। इसका कारण यह है कि कर्म के साधन को समझा नहीं जाता और उसमें मन नहीं लगाया जाता अन्यथा जो आदर्श मन बुद्धि में स्थित है यह इतना चित्ताकर्षक है कि वह हृदय के समस्त भावों को अपनी ओर खेंच लेता है। हमारे जीवन में यह त्रुटि है कि हम उसके खिंचाव की ओर से कभी कभी बहक जाते हैं और दूसरे कामों की ओर आकर्षित होकर अपनी शक्ति को व्यर्थ खो बैठते हैं। यदि हम पूर्णतया उसकी ओर ध्यान देते तो धीरे-धीरे वह अपना काम बना लेता; क्योंकि वह स्वयं भी ज़बरदस्त कारण है। कारण ही कार्य कराता है और कार्य ही के उपलक्ष में फल उत्पन्न होते हैं। कोई फल बिना कारण के नहीं होता, क्योंकि यह जगत कारण और फल का स्थान है। कमी यदि है तो यह है कि कारण में मन नहीं लगाया जाता। यदि एक बार उससे घनिष्ट सम्बन्ध पैदा कर लिया जाय तो फिर उसकी धार आपही आप चालू हो जाती है और वह उस समय तक कभी चुप नहीं होती और न चैन लेने देती है जब तक अपनी पूर्त्ति नहीं करा लेती। कर्म करने का रहस्य केवल यह है कि मन में आदर्श को स्थान देकर रात दिन उसी में लगा जाय। दिन के २४ घंटे इसको दिये जाँय। जाग्रत अवस्था में उसी का ध्यान रहे। स्वप्न में भी उसी का स्वप्न देखा जाय और सुषुप्ति की अवस्था में जाकर भी उसके सूक्ष्म प्रभाव और संस्कारों को साथ रक्खा जावे ताकि जागने पर हमारी इन्द्रियों की शक्ति के साथ साथ वह भी जाग्रत हो जावे। हाथ पाँव में उसी की शक्ति है। मन और बुद्धि में उसी का प्रभाव है। शरीर के रग रग में उसी की गति रहे। फिर देखिये कैसे सफलता नहीं होती। सफलता तो अवश्यम्भावी है। वह आदर्श के साथ है। असफलता का कारण केवल यह

है कि आदर्श और काम के साधन से उपेक्षा की जाती है। लोग अपनी योग्यता और सामर्थ्य पर तो ध्यान नहीं देते, किसी आदमी को किसी काम में सफलता प्राप्त करते देखा और उसी की ओर लग गये। यह नहीं समझा कि हमारे और उसके स्वभाव में आकाश पाताल का अंतर है। हमारी और उसकी चित्तवृति भिन्न भिन्न हैं। जो बात उसको प्राप्त है वह हमको नहीं है वह व्यर्थ में गलती और अनसमझी के शिकार होते हैं और असफलता का मुँह देखते हैं। एक व्यक्ति को व्यापार के द्वारा रुपया कमाने की योग्यता है। दूसरा चित्रकारी से रुपया कमाता है। यदि यह दूसरा व्यक्ति गलती से व्यापार की ओर जाता है तो स्पष्ट रूप से प्रकट है कि वह अपने चित्त की वृतियों को मार देता है और बिना हानि उठाये नहीं रहता।

दुनियाँ में दो आदमी एक तरह की चित्त वृति वाले नहीं हैं एक सूची के किन्हीं दो आदमियों को लेलो। वह एक समान नहीं मिलेंगे क्योंकि काल भगवान की सृष्टि में दो अलग-अलग व्यक्ति एक समान नहीं बनाये गये हैं। इनके काम करने के ढंग भी अलग हैं। न दो बादशाह एक स्वभाव के मिलते हैं और न दो भिखारी एक ही रंग और एक ही ढंग के दिखाई देते हैं। अवतारों को लेलो। न राम कृष्ण हैं और न कृष्ण राम हैं। न परशुराम वामन हैं न वामन परशुराम हैं। यह सच है कि वह अवतार हैं। इनके रंग ढंग बिल्कुल पृथक थे। अशोक न विक्रमादित्य के समान थे न विक्रमादित्य अशोक के समान। यह सच है कि दोनों राजा थे। दोनों का समय गौरवपूर्ण था मगर दोनों के सार्वजनिक और नागरिक काम भिन्न भिन्न थे। यदि एक वकील अपने पेशे में सफल रहे तो तुम यह परिणाम नहीं निकाल सकते कि तुम भी वकालत की परीक्षा पास

करके उसके पग पग पर चल कर वैसी ही सफलता प्राप्त कर सकोगे। तुमको तो वह ढंग ग्रहण करने पड़ेंगे जो तुम्हारे मन के लिये विशेष रूप से बनाये गये हैं। मन की सम्मति लो और इसी के अनुसार काम करो। तब सफलता का मुँह देख सकोगे नहीं तो असफल रहोगे। नकल करना गलती है। धर्म के विषय में भी नकल करना पथ भ्रष्टता का चिन्ह है।

लोग सफलीभूत लोगों के जीवन चरित्र पढ़ते हैं। लालसा उत्पन्न होती है कि हम भी उसके पग चिन्हों पर चलकर इसी ढंग से सफलता प्राप्त करें मगर क्या तुमने उन चलने वालों में से किसी दो को एक दशा और एक हैसियत में पाया है। हम समझते हैं कि इसका उत्तर 'हाँ' में कभी न दिया जायगा क्योंकि न ऐसा कभी सम्भव है और न ऐसा कभी होगा। हर एक की समझ बूझ निराली है। जब तक वह अपनी विशेष समझ से काम न लेगा तब तक योंही मारा मारा फिरेगा और गेंद की तरह लुढ़कते हुये दुनियाँ के पाँव की फुटबौल बना रहेगा। समस्त प्रकृति हमारी सहायता करने के लिये तत्पर है बशर्ते कि हम अपनी स्वभाविक जिज्ञासा या माँग के अनुसार उससे काम लेने का गुर सीखें। वृक्ष मैदान में खड़े हुये आकाश मंडल से सीधे अपने भोजन की सामिग्री खेंच लेते हैं मगर हमको यह योग्यता प्राप्त नहीं है। हम दूसरे साधनों से अपनी खाद्य सामिग्री प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं।

दुनियां में गिरगिट गिरगिट हैं और छिपकली छिपकली है। गिरगिट कभी छिपकली नहीं हो सकता। इसलिये आवश्यक है कि सफलता प्राप्त होने से पहिले हम सफलता के लिये अपनी असली योग्यता और स्थिति का अनुमान लगायें और उसी अनुमान के अनुसार काम करना आरम्भ करदें। तब

तो हम अपना काम बना लेंगे अन्यथा अपमानित होकर मारे मारे फिरेंगे। इसमें एक बात और भी है। जहाँ यह दुनिया हमारे भोग की वस्तु है वहाँ हम भी कभी कभी औरों के भोग के सामान बनते हैं। यदि हम में योग्यता है तो वह भोग हमारे जीवन की उन्नति का कारण और सहायक हो जाता है नहीं तो हम को स्वयं खा जाता है।

मनुष्य प्रकृति माता के पेट से उत्पन्न होता है। उसी की सामिग्री से पलता है। यदि वह अपनी स्थिति को जानकर देवताओं के मार्ग पर चलता है तो प्रकृति माता उसकी सहायक रहती है। यदि वह असुरों के मार्ग पर लगा तो प्रकृति माता आप काली का रूप धार कर उसको खा जाती है और उसका रक्त चूस लेती है। रचना में कहीं भी निरर्थक वस्तुओं की देन का प्रबन्ध नहीं है। जो रक्त विषैला हो जाता है वह निकाला जाता है। जिस पदार्थ में गंदापन है वह नष्ट हो जाता है यदि देह जीवित रहने के योग्य नहीं है तो वह मृत्यु का शिकार होती है और प्रकृति की शक्तियाँ आक्रमण करके उसको देखते देखते इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर देती है कि मानो उसका अस्तित्व ही नहीं था। हमने यहाँ पर पाँच बातें वर्णन की हैं। (१) पहिली बात यह है कि अपने आदर्श के पद को समझकर उसे अपने मन में स्थिति करो। (२) अपनी योग्यता का अनुमान लगाकर कर्म करो। (३) कर्म के साधनों और युक्तियों पर सोचते हुए उनको काम में लाओ। (४) मन को रोक रक्खो कि वह सिवाय इष्ट पद या आदर्श के और किसी ओर बहकने न पावे। (५) कर्म के बदले में जो सिद्धि शक्ति या सफलता प्राप्त होती जाय उसकी ओर कम तवज्जह करो। सफलता के लिये इन पाँच बातों को अच्छी तरह हृदयांकित कर लेना आवश्यक है। यदि यह समझ में बैठ गई और चित्त

कर्म में लग गया तो फिर सफलता अवश्यमेव होगी।

उन्नति के मार्ग में सहस्रों प्रकार की बाधायें आती हैं। राहगीर रास्ते पर चला जा रहा है। पग पग पर लुभाने वाली सूरतें मिलती हैं। वह अपनी ओर खेंचती हैं, उनकी मुस्कराहट में जादू है, जो चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।

चलो चलो सब कोई कहे, बिरला पहुँचे कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥

धन मिलता है। मान सम्मान मिलता है। यश प्राप्त होता है। लालच बढ़ता जाता है। उनकी ओर कभी ध्यान मत दो। यह नाश की सूरतें हैं। इनका चुलबुलापन गजब ढाता है। एक दो नहीं हजारों जाल तने हुए हैं। जिनसे बचकर निकलना कठिन है। कोई गुरु प्यारा ही इनसे बचकर निकलता है। कर्म करते हुए चले चलो। इधर उधर मत भटको। केवल इष्ट पद की ओर दृष्टि रहे पीछे मुड़कर कभी न देखो।

अभीष्ट स्थान दूर है। वह दूर से कुछ का कुछ दिखाई दे रहा है। दूसरे से देखकर उसका अनुमान कभी न लगाओ। राह में हजारों समुद्र झकोले ले रहे हैं और असंख्य ऊँचे ऊँचे पर्वत मार्ग में रुकावटें हैं। कभी सन्तोष न करो। केवल उसको दूर से देखकर कभी सन्तुष्ट न बनो। नाक की सीध में चले चलो और कर्म करते हुए चले चलो। जब इष्ट पद पर पहुँचोगे उस समय देखा जायगा। अभी से कुछ कहना सुनना व्यर्थ है। मन को काबू में लाकर काम करो और जहां मन काबू में आ गया और तुम उस पर सवार हो गये फिर अवश्यमेव सफलता तुमको प्राप्त होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

जूझेंगे तब कहेंगे, अब तो कहा न जाय।
काम पड़े मन मसखरा, जूझे कै हट जाय॥

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार हैं, सो साधू कोई एक॥
मन के मते न चालिये, मन की चाल हजार।
जो काटें भ्रम जाल को, सो साधू हुशियार॥
मन पानी मन आग है, मन वायु आकाश।
मन सोखे मन तर करे, मन जारे सब आश॥
मन लोभी मन लालची, मन कामी मन गाँस।
साधू कोई ऊबरे, काटे जम की फाँस॥
कबहूँ मन गगना चढ़े, कबहूँ जाय पताल।
कबहूँ मन उनमन लगे, कबहूँ निकसे चाल॥
मन पर काबू पाय कर, चल तू गुरु के धाम।
गुरु की दया अपार से, पूरन हों सब काम॥
मन को फटक निचोड़ ले, सब आपा मिट जाय।
पिंगल होय गुरु को भजे, भक्ति प्रेम हुलसाय॥
राधास्वामी नाम ले, और यतन सब त्याग।
गुरु की दया से 'नन्दुआ,' जागें पूरन भाग।

छठा प्रकरण

निष्काम कर्म

फल कारण सेवा करे, तजे न मन से काम।
कहें कबीर सेवक नहीं, चहे चौगुना दाम॥
दुख सुख एक समान कर, हर्ष शोक नहिं व्याप।
निः कामी निः कामना, तब गुरु आवे आप॥

कर्म पहिले किसी ध्येय को सामने रखकर किया जाता है। ज्यों ज्यों दृष्टि ऊँची होती जाती है त्यों त्यों अपने लाभ और

अपने स्वार्थ का प्रश्न दूर होता जाता है। कर्म करता है मगर कर्म फल की इच्छा नहीं रखता। यह निष्काम कर्म कहलाता है।

बात सरल है मगर इसका समझना कठिन है। साधारण रूप से समझना भी सुगम है मगर इसका करना कठिन है। यदि कर्म आदि से अन्त तक बन्धन का कारण बना रहा तो उससे भलाई क्या हुई। अतः कर्म को ऐसा माँझा दे दिया जाय कि उसमें भक्ति की झलक और ज्ञान का प्रकाश प्रगट हो। क्यों न कर्म को ऐसी सूरत में स्थायी किया जाय कि वह भक्ति और ज्ञान के आदर्श के दर्जे तक पहुँच जाय। भक्ति अद्वैत का लक्ष है ज्ञान अद्वैत पद है और कर्म में क्रिया, कर्म और कर्त्ता की त्रिपुटी रहती है। जिस समय वही कर्म निष्काम बन जाता है वह अद्वैत पद का वाच और लक्ष दोनों हो जाता है।

कर्म करना और कर्म के फल की इच्छा न रखना निष्काम कर्म कहलाता है। साधारण रूप से लोग समझते हैं कि यज्ञ, पूजा पाठ हवन आदि करना जो सामाजिक धर्म के स्तम्भ हैं, कर्म कहलाते हैं मगर दुनियाँ में जो कुछ हो रहा है वह कर्म ही है। नहाना धोना, खाना पीना यह सब कर्म हैं मगर यहाँ जिस कर्म से अभिप्राय है वह उस प्रकार के कर्म हैं जिनका मन पर प्रभाव पड़ता है और जो बन्ध और मोक्ष के कारण बनते हैं। प्रारम्भ में जो कर्म किया जायगा वह किसी स्वार्थ को दृष्टि के सामने रखकर ही किया जायगा मगर धीरे धीरे जब सफलता की सीढ़ियाँ समाप्त हो जांयगी तब मनुष्य उच्च दृष्टि और उच्च हृदय वाला हो जायगा। फिर सम्भव है कि समझ बूझ आने पर वह कर्म निष्काम कर्म बन जाय। यदि कर्म निष्काम नहीं होता है तो उसका फल अवश्य मिलेगा। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति सदाबरत देता है। भूकों को रोटी देने

में उसने पुन्य समझ रक्खा है। दान करने से यह पुन्य इसको प्राप्त होगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि उसने अपने विचारों को यहाँ ही तक सीमित रक्खा तो उसकी अपनी श्रद्धा और दान लेने वालों की शुभ भावना से इसको पुन्य मिलेगा। साथ ही साथ अन्तः करण की शुद्धि भी होती जायगी। इस अन्तः करण की शुद्धि से वह अपने भीतर विचार शील होगा। यदि विचार करते हुये और साथ साथ शुद्ध हृदय से उसने सदाबरत को चालू रक्खा और बिना किसी स्वार्थ के इसको देता रहा तो उसका कर्म निष्काम हो जायगा और बन्धन का कारण नहीं होगा। और यदि उसको यशवान होने की हवा लग गई तो वह प्रसिद्ध तो अवश्य हो जायगा क्योंकि कर्म का फल मिलना आवश्यक है मगर उसके कार्यों का क्रम फिर बन्धन ही बनेगा। इसलिये कहा गया है कि सीधे हाथ से इस प्रकार दान दो कि बाँया हाथ तक न जानने पावे। कर्म करो। कर्म के फल को तथा कर्म को ईश्वर के अर्पण करते जाओ ताकि कर्म बन्धन का कारण न हो सके। निष्काम कर्म करने वाले वास्तव में त्याग का जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें भलाई है। भलाई के अतिरिक्त और कोई बात उनसे प्रगट नहीं होती क्योंकि उन का निज स्वार्थ ऐसे कर्म में सम्मलित नहीं रहता है। कबीर साहब की बाणी है:—

तरुवर सरवर संत जन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारणे, चारों धारें देह॥
आस आस जग बंधिया, बंधे मुरीद और पीर।
सबका बंधन काटने, संतन धरा शरीर॥

मेह, वृक्ष, तालाब और संतों का दृष्टान्त जो निष्काम कर्म के विषय में दिया जाता है, इसका केवल एक अंग लेना चाहिये

क्योंकि दृष्टान्त सब अंगों में नहीं घट सकता। संत दुनियाँ में आते हैं। दूसरों ही के उपकार में समस्त जीवन लगे रहते हैं। अपने व्यक्तित्व की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। अपने जीवन में कृपा का स्रोत चालू कर जाते हैं और वह बहुत समय तक उनके पश्चात् भी चालू रहता है।

कर्म को जो लोग योगी बनकर करते हैं वह अपने स्थूल शरीर में रहते हुए भी आन्तरिक और सूक्ष्म देह से अधिक सम्बन्ध रखकर अनजान रूप से आत्मा के केन्द्र पर बैठक रखते हैं और उनका काम बरकत व भलाई का कारण होता है। इसी प्रकार आत्मिक उन्नति करने पर जब मन का रुझान आत्मा की ओर हो जाता है तब भी मेरा तेरा पना नहीं रहता। इसकी पूर्णता समाधि में होती है। जहाँ मेरा तेरा पना अधिक रहता है वहाँ निष्काम कर्म नहीं हो सकता। इसलिये निष्काम कर्म करने वाले भी किसी सीमा तक योगी ही कहलाते हैं। काम करते करते अपने आप को भूल जाना कर्म योग है। इस प्रकार का काम जिसके सिलसिले में मनुष्य अपने आपको भुला देता है और मेरे तेरे पने का लगाव नहीं रहता निष्काम कर्म कहा जा सकता है। इस प्रकार के कर्म करने से दुनियां का भला होता है।

निष्काम कर्म करने वाले की पहिचान यह है कि वह भले होते हैं। उनमें बुराई नहीं होती। उनके निकृष्ट भाव और स्थूल देह के भान बोध दबे रहते हैं। इनके चित्त की वृत्ति केवल उद्देश्य की पूर्ति की ओर आकर्षित रहती है। जो इस प्रकार निष्काम कर्म करते हैं, वह जीवन मुक्ति के आनन्द के भागी बनते हैं। फिर सच्चे ज्ञान के अधिकारी होकर अपनी आत्मा में लीन रहते हैं।

हम बासी उस देश के, जहँ सत्त पुरुष का खेल।
दीवा बलता अगम का, बिन पानी बिन तेल॥
राम जीत हैं नाम को, नाम जीत हैं धीर।
ताहू ते कुछ ऊपरे, ताको जपें कबीर॥

सप्तम प्रकरण

कर्म करने से मन की शक्ति का उभार

कबीर यह मन प्रेत था, अब मैं पाया जान।
टाँकी लागी प्रेम की, निकसी कंचन खान॥
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, भजता हरि दिन रात॥
पहिले था मन लालची, करता अति उत्पात।
अब तो मन दानी भया, देता प्रेम की दात।
जहाँ बाज बासा करे, पंछी रहे न कोय।
मन में प्रेम प्रगट भया, अब नहिं विकलप होय॥

दुनिया में जो कुछ होता है, हुआ और होगा, वह सब मन ही का खेल और तमाशा है। जो लोग इस दुनिया को कल्पित बताते हैं वह गलती पर नहीं हैं। किसी की समझ में न आवे यह दूसरी बात है मगर है यह मन का खेल। मन ही सारी शक्तियों का भंडार है। मन ही में सब कुछ भरा पड़ा है। इसको तनिक गति देने की आवश्यकता है। फिर आप ही आप काम होने लगता है और ज्यों ज्यों जिस जिस प्रकार का काम होता है इसी प्रकार मन में नई नई शक्तियाँ आने लगती हैं। यह सारी शक्तियाँ मभूलियत की दशा में पड़ी हुई हैं। इनको थोड़ी सी गति दो, उभर खड़ी होंगी और तुम ऐसा तमाशा देखोगे कि अचंभे में रह जाओगे।

सामने एक भारी चट्टान पड़ी है। कई मन की है। एक आदमी से कहा गया कि उसको उठाये। वह घबराता है। उसके उठाने के लिये बड़े असमंजस में पड़ जाता है। वह कहता है कि इसका उठाना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। दो चार आदमी उसे साहस देते हैं और उससे कहते हैं कि ईश्वर ने तुमको शक्ति दी है, तुम मनुष्य हो, तनिक जोर आज़माई तो करो। क्या कठिन बात है। अन्त में वह हाथ लगा ही देता है। हाथों में बल आ जाता है। पाँवों में शक्ति आ जाती है। आँखें अंगारे की तरह लाल हो जाती हैं। वह बल लगाता है और देखते देखते वह चट्टान को उठा लेता है और उठाकर धम से फेंक देता है। आखिर यह शक्ति कहां से आई। क्या दूसरे लोगों ने इसको शक्ति दी है? नहीं, बल उसमें पहिले ही से था। उसके मन में छिपा था। कहीं बाहर से नहीं आया।

एक विद्यार्थी के सामने स्लेट रक्खा हुआ है। अध्यापक ने गणित का कठिन प्रश्न दे दिया है! वह सोच रहा है। कोई बात समझ में नहीं आती। विद्यार्थी चिन्तित है। प्रयत्न में लगा हुआ है। सोचते सोचते प्रश्न का हल करके रख दिया। यह शक्ति कहाँ से आई? उसके अन्तर तो थी और यह मन में पहिले ही से मौजूद थी। दबी हुई पड़ी थी। गति पाकर उभर आई।

सांसारिक व्यवहार में प्रायः इस प्रकार के मामले सामने आते हैं कि चित्त व्याकुल हो जाता है। प्रेमी तथा हितैषी उपाय बताते हैं, सम्मति देते हैं मगर चित्त स्वीकार नहीं करता। जब चित्त व्याकुल होकर एकाग्र हो जाता है और मन अपने अन्तर ऊँचे की ओर आकर्षित हो जाता है तब अपने आप इस प्रकार की बात समझ में आ जाती है कि जिससे इस मामले की गुत्थी सुलझाना आसान हो जाता है। प्रायः लोगों को

स्वप्नावस्था में कई बातें सूझ जाती हैं। यह सब बातें कहीं बाहर से नहीं आतीं। मनुष्य के अपने अन्तर मन में मौजूद हैं और वह अपने अन्तर से इनको निकालकर पेश करता है। यह मन वास्तव में बड़ा शक्तिशाली है। कोई बिरला आदमी उसकी असलियत को समझता है। इसकी चाल बिजली से अधिक तेज, वायु से अधिक चंचल और पानी से अधिक पतली है। यह हर जगह समा जाता है और प्रत्येक वस्तु को ढक लेता है। जो कुछ दुनियाँ में है वह सब मन ही मन है। यह ब्रह्माण्डी मन का सच्चा पुत्र है। ब्रह्माण्ड में भी जो कुछ है वह सब मन ही मन है। जिस प्रकार ब्रह्माण्डी मन जिसको हम ब्रह्म कहते हैं, ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के खेल खिलाता रहता है उसी प्रकार इस नीचे के मंडल में हमारा मन भी तरह तरह के नाच नाचता रहता है और नचाता रहता है। जिसने इस मन का पता पा लिया, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया। जिसने इसका पता नहीं पाया उसने किसी का भी पता नहीं पाया। तुम कहाँ बहके फिरते हो। तनिक अपने मन के अन्दर प्रवेश करके उसके रूप को देखने का प्रयत्न करो तो तुमको वह खेल दिखाई देंगे जो दूसरी जगह कहीं भी दिखाई न दे सकेंगे।

जब यह बहुत सी बातों की ओर ध्यान देने लगता है तो निर्बल हो जाता है। बहती हुई गंगा जब कई धारों में बट जाती है तो इसमें इतनी शक्ति नहीं रहती है लेकिन जिस समय वही एकत्रित होकर एक ओर झुक जाती है तो बलवान हाथी की भाँति झूमती हुई जंगलों के वृक्षों को उखाड़ कर फेंक देती है। ऋषि विश्वामित्र ने इस मन की एकाग्रता के कारण अपना अलग ब्रह्माण्ड रच लिया था। ध्रुव इसी मन के एकाग्र करने से सूर्य्य मंडल का ध्रुव बन गया है। परशुराम ने मनको एक

ओर लगाया और सहस्राबाहु को मिट्टी में मिला दिया और २४ बार शक्तिशाली क्षत्रियों को पराजय किया। वशिष्ट ऋषि थे। इस मन के प्रताप से विश्वामित्र जैसे शक्तिशाली को लोहे के चने चबवाये। राम और लक्ष्मण अकेले बन को गये थे। मन की उपज और निराली नवीनता से रीछ और बन्दरों की सेना इकट्ठा करके उनको सैनिक शिक्षा देकर दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति को क्षणमात्र में नष्ट भ्रष्ट कर दिया। जिस वस्तु ने रावण को देवताओं पर शाशन प्रदान किया वह यही मन था। मनुष्य एक काम को ग्रहण करता है। चित की वृति को दूसरी ओर जाने से रोकता है। वही एक संकल्प, वही एक सौदा मनके एकाग्र हो जाने के कारण प्रबल शक्ति बन जाता है। इसीके क्रम में तरह तरह की योग्यता अपने आप पैदा हो जाती हैं और आदमी अपना काम बना लेता है। किन्तु वही आदमी यदि भूल कर बहुत सी बातों की ओर ध्यान देता है और लालच करने लगता है तो मन की एकाग्रित शक्ति को बखेर देता है और लोक परलोक कहीं का नहीं रहता।

लोक परलोक कहने के लिये दो हों मगर वास्तव में उनमें कोई भी अंतर नहीं है केवल दृष्टि ऊँची होनी चाहिये। जो व्यक्ति दुनियाँ के कामों में कायर बनकर पीठ दिखाता है वह व्यक्ति परलोक के काम को क्या कर सकेगा। चित वही है मन वही है। दुनियां छोड़ कर परलोक की ओर जाने से क्या यह सम्भव है कि चित बदल जायगा? एक तेज़ चाल घोड़ा क़दम भरता हुआ दाईं ओर जारहा है। सरपट की चाल चलता हुआ हवा से बातें कर रहा है। बुद्धिमान सवार ने उस की बागडोर मोड़ दी। वह बाईं ओर झुक गया और इस ओर भी फर्राटा भरता हुआ जा निकला। घोड़ा तेज़ था। इस में चुस्ती और चालाकी थी। इसलिये इस ओर भी उसने अपनी

तेजी दिखलाई। यदि वह सुस्त होता तो इधर भी सुस्त ही रहता। चित रंगीला है जिस ओर रुझान करेगा, हर वस्तु को रंगीली बनादेगा। यदि चित्त की दशा बिगड़ी हुई है तो अच्छी से अच्छी वस्तु को पाकर भी उसे फीकी कर दिखायेगा। कायर और निकम्मे लोग जिस प्रकार दुनिया में तिरस्कृत रहते हैं वैसे ही परलोक के विषय में भी अपमानित रहेंगे। क्या हुआ यदि किसी ने गेरुआ वस्त्र पहिन लिये। तुम समझते हो वह साधू हो गये। हम उनको साधू नहीं कहते। साधू वह हैं जो साधन अवस्था में रहते हैं। साधन अवस्था का सम्बन्ध कर्म से है। यदि वह कर्म से जी चुराते हैं तो फिर वह साधू कैसे! राधास्वामी दयाल की वाणी है:—

जिनकी नहीं धारना ऐसी। घर को छोड़ होंय परदेसी॥
कपड़े रंग बातें बहु सीखी। जग को ठगें कहायें भेषी॥
कर्म लिखी वह भोगें अपनी। भरमत फिरें पहन कर कफ़नी॥
उनका नाम भेष नाह होई। वह पाखंडी जानो सोई॥
दीन गँवाया दुनिया खोई। ना गिरही ना त्यागी होई॥

हम दुनिया को धर्म पर विशेषता देने के विचार से यह बातें नहीं कहते। हमारे कहने का अभिप्राय केवल यह है कि मनुष्य अपनी योग्यता और अधिकार का अनुमान करे और जो बात उसको चित्ताकर्षक प्रतीत हो उस से जी लगाये और मन की पूरी तवज्जह उस ओर लगादे ताकि मन उभर कर अपने अंदर की छुपी हुई शक्तियों को प्रगट कर सके। बहुत से लोग स्वाभाविक रूप से ऐसे होते हैं जो दुनिया में साधु वृत लेकर आते हैं। उनके लिये साधु की हैसियत में रहना आवश्यक है। वह इसी काम को अपनी तवज्जह दें और इधर उधर न बहक कर मन को आदर्श की ओर लगायें। जो ऐसे नहीं हैं उनको केवल तृष्णा और चमत्कारों के ख्याल से तथा

व्यर्थ मान बड़ाई के लालच से साधु के भेष में न आना चाहिये अन्यथा वह कहीं के भी न रहेंगे। हर एक को अपनी उपयुक्तता देखनी चाहिये। जिस समय चित्त एक काम की ओर लग जाय, वह उस काम को पूरा करे और उस पूर्ति के साथ आत्मिकता (रूहानियत) का लाभ प्राप्त करता जाय।

धर्म का संस्कार तो हर व्यक्ति को ग्रहण करना चाहिये और इसी कारण से बाल्यावस्था ही से दीक्षा दी जाती है मगर भेद यह है कि **जो काम प्रिय हो उसको ईश्वर की पूजा समझकर किया जाय।** उसको पवित्र समझ कर किया जाय। इस प्रकार यदि उसकी ऐसी हैसियत समझ में आगई तो वह बरकत की वस्तु होगी और कभी बंधन का कारण नहीं बनेगी। कर्म करने वालों को यह आदेश है **वह सायंकाल व प्रातःकाल अपना कुछ समय मालिक को दें और उससे प्रार्थना किया करें कि जो कर्म हम करें वह तेरे अर्पण हों और हमारे कष्ट का कारण न बनें।** यदि इस प्रकार की वृति बना ली जाय तो लोक और परलोक के समझने में अधिक अंतर नहीं रहता।

कर्म करने से मन की शक्ति उभरती है और अपना रास्ता खोजती है। यदि उसको अज्ञात छोड़ दिया जाय तो फिर स्थूल और गंदली होकर आलसी बन जाती है और वह व्यक्ति सिवाय खाट तोड़ने के और किसी काम का नहीं रहता। अपने लिये भी दुख का कारण बनता है और अपने सम्बन्धियों को भी दुखी करता है। उससे किसी को लाभ नहीं पहुंचता।

मन की शक्ति असीमित है। यही काम धेनु गाय है और यही कल्प वृक्ष है मगर शर्त यह है कि गाय को दुहा जाय और वृक्ष

की टहनियों को झुका कर फल तोड़ा जाय। एक बार मन को एकाग्र करके उसपर क़ाबू पा लिया जाय। फिर यह मन सब कुछ कर सकेगा।

जब हम लड़के थे हमारे गाँव में एक मुसलमान फकीर आया करता था। वह एक साधारण फकीर था। लंगोटी और कम्बल के सिवाय और कोई वस्तु उसके पास नहीं रहती थी। हम सब लड़के उसके चारों ओर इकट्ठा हो जाया करते थे और कहा करते थे कि बाबाजी ! बताशे बरसाओ। फकीर ऊपर हाथ उठा देता था और उसके हाथों से बताशों की वर्षा होने लग जाती थी। लड़के सब चुन चुन कर खाया करते थे और प्रसन्न होते थे। तुम समझते होगे कि हम व्यर्थ तुमको चमत्कारों की ओर आकर्षित कर रहे हैं। नहीं, यह तुम्हारी गलती है। असलियत यह है कि यह खेल तमाशे केवल मन की धार के खेल हैं। हमारे कहने का जो अभिप्राय है वह इतना ही है कि मन जो चाहे कर दिखाये। मन से जो संकल्प की धारें निकलती हैं वह कुछ नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म विचार ही हैं जो अधिक सूक्ष्म होने के कारण तुम्हारी आँखें इनको देख नहीं सकतीं और न देखने योग्य हैं। यह जो कुछ चमत्कार होते हैं सब मन के खेल हैं।

जो व्यक्ति साधक और कमाई किया हुआ होता है उसके मन से जो धार निकलती है उसमें मन के अन्तःकरण की बोध करने वाली सब शक्तियां एकाग्रित रूप से विद्यमान रहती हैं और वह कमाल दिखाता है। मन में आकर्षण शक्ति है जो जादू का प्रभाव रखती है। लोग इन बातों को चमत्कार समझते हैं। इनमें चमत्कार कुछ भी नहीं है। वही मन का नियम हर जगह काम करता है।

योग की सिद्धि शक्तियां जिनको लघिमा, गरिमा, पराक्रम आदि कहते हैं कोई और वस्तु नहीं है। केवल मन के संयम कर लेने या नियंत्रण कर लेने से प्राप्त होती हैं। यह मन यदि चाहे तो हजारों कोस अपने विचारों या संकल्पों की धार फेंक कर काम कर सकता है। भौतिक जगत में तार व रेडियो आदि के द्वारा जो समाचारों के भेजने का प्रबन्ध चालू है आश्चर्य्य का कारण है किन्तु यदि मन की शिक्षा उचित रूप से की जाय तो स्थूल मण्डल में इसके समाचार भेजने का प्रबन्ध आश्चर्य्य-जनक होगा।

जिस काम कों मन दिया जाता है, जो जिस काम का अभ्यास किया करता है, जो जिस विषय की ओर अधिक ध्यान देता है, वह उसके अनुसार अपने मन के भीतर नई नई शक्तियाँ उत्पन्न कर लेता है। यहाँ जो कुछ पसारा है वह सब मन ही का है। इसलिये मन की शक्तियों के उभरने के उद्देश्य से कर्म करना चाहिये और कर्म करने को मन देना चाहिये, मन समस्त शक्तियों का भण्डार है। चाहे वह स्थूल हों, सूक्ष्म हों या कारण हों, शारीरिक हों, मानसिक हों या आत्मिक हों। समस्त शक्तियाँ इसी मन में भरी पड़ी हैं।

मन ही को परबोधिये, मन ही को उपदेश।
जो यह मन बस आवही, तो शिष्य होय सब देश॥
मन गोविन्द मन गोरखा, अन्तरयामी सोय।
जो मन राखे जतन से, आप ही कर्त्ता होय॥

आठवाँ प्रकरण

कर्म और जगत के उपकार का ध्यान

जब लग तेरी देह है, देह देह कुछ देह।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल येह॥
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह।
आगे हाट न बानियाँ, लेना है सो लेह॥
धन दिये धन ना घटे, नदी न घट्टे नीर।
अपनी आंखों देख लो, यों कथ कहें कबीर॥

तुम कर्म करो। चाहे जिस भाव से करो, कुछ करना चाहिए। सुस्त और बेकार रहना ठीक नहीं है। कर्म स्थल में कर्म करना आवश्यक है। राजा, योगी, यती, सती सबको कर्म करना पड़ता है। इससे किसी को भी छुटकारा नहीं है। अपने लिये कर्म करो। दूसरों के लिये कर्म करो। बहुत से लोग कहते हैं कि हम क्यों कर्म करें। हम को कुछ किसी से लेना नहीं है। बिना प्रयोजन केवल मूर्ख ही कर्म करते हैं। सुनने में यह बातें बहुत अच्छी लगती हैं। जब कोई प्रयोजन ही नहीं है तो क्यों व्यर्थ का कष्ट उठाया जाय; किन्तु यह बात ठीक नहीं है। हम देखते हैं कि दुनिया में जड़ और चेतन सब कर्म कर रहे हैं। कर्म के चक्र में सब एक दूसरे के साथ बँधे हुए हैं। यहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का आश्रित या मुहताज दिखाई देता है। मनुष्य के परस्पर के सम्बन्ध तो यों ही एक दूसरे से मिले जुले दिखाई देते हैं। कोई खेती करता है, कोई बाग लगाता है, कोई नये नये आविष्कार करता है, कोई कपड़े सीने का काम करता है, कोई जूते बनाता है। लकड़ी काटना, बर्तन गढ़ना, चित्रकारी, वकालत, डाक्टरी आदि आदि हजारों तरह के कर्म होते रहते। यदि एक व्यक्ति अपना काम बन्द

कर दे तो दूसरों को कष्ट हो जाता है। यदि भंगी हड़ताल बोल दें तो समस्त शहर वालों की दुर्गति हो जाय और अभी महामारी फैल जाय। इसलिये आवश्यक है कि हम दूसरों के काम की कदर करें और आप भी काम करते हुए दूसरों को लाभ पहुँचाते रहें। यह हम चेतन्य जगत में देख रहे हैं किन्तु जड़ जगत भी किसी प्रकार हमारा अपना काम कर रहा है। सूर्य चमकते हुए हमको प्रकाश, गर्मी और जीवन देता रहता है। मेह बरसते हुए हमारे लिये अन्न और दूसरी आवश्यक वस्तुयें उत्पन्न करता है। अग्नि जलती हुई न केवल हमारे भोजन के पकाने का प्रबन्ध करती है किन्तु स्वच्छता और स्वास्थ्य देती है। जहाज़, रेल, इंजिन और सब कल आदि इसी से चलती हैं। वायु न हो तो हमारे रहने का स्थान न हो। मिट्टी जल आदि सब का कृपा स्रोत चालू है। यह हम अपनी खुली आंखों से देख रहे हैं। जब दुनियाँ में इस प्रकार कर्म का चक्र चालू है तो फिर हम कैसे और किस मुँह से कह सकते हैं कि हमको कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य कर्म करने के लिए ही पैदा किया गया है।

जो व्यक्ति दूसरों से लाभ उठा रहा है उसके लिए भी आवश्यक है कि वह कर्म करने और कर्म के सिलसिले में न केवल दूसरों की कृतज्ञता को स्वीकार करे किन्तु अपने को दूसरों की सेवा के लिये वक्फ करे अन्यथा कृतघ्नता का दोष लगेगा और उनका ऋणी रहना पड़ेगा। दुनिया में पग पग पर बदले का कानून काम करता है। जो लेगा उसको देना पड़ेगा। जो देगा उसको लेना होगा। इससे कौन बच सकता है। यह यों ही है और इसी तरह होता रहेगा। कोई माने या न माने, काल भगवान उसको मनाकर छोड़ेंगे। न्याय की व्याख्या यही है कि यदि दूसरों से लाभ उठाते हो तो उस

लाभ के उद्देश्य से कुछ न कुछ काम किया करो वर्ना ऋणी रहोगे। ऋणी की हैसियत अच्छी नहीं होती है। तकाजा करने पर लज्जित होना पड़ेगा। लेने देने की धारें हर जगह काम कर रही है। एक साँस आती है दूसरी जाती है। जाने वाली साँस से तुम स्वयं वृक्षों को भोजन देते हो क्योंकि वह उसके अधिकारी हैं। आने वाली सांस से तुम भोजन लेते हो क्योंकि तुम उसके अधिकारी हो। दृष्टि जितनी ऊँची होती जायगी उतनी ही इस विषय के समझने की योग्यता आती जायगी। इसलिये कर्म करना आवश्यक है। जो ब्रह्मा ने नियम बनाये हैं उनसे बचकर तुम कहाँ जा सकते हो। वहतो अपनी सी कराके छोड़ेगा।

यदि सीधे काम नहीं करते हो तो सिर पर काल भगवान के डंडे बरसेंगे और व्यर्थ हर्ष या शोक के साथ काम करना ही पड़ेगा। यदि इस प्रकार अपने लाभ के लिये काम नहीं करते तो न सही, दूसरों के उपकार के विचार से काम करो। उपकार करना बुरा नहीं है। दुनिया में कौन आदमी है जो उपकार को बुरा कहता है। यदि अपने लाभ का ध्यान नहीं है तो बहुत अच्छा, दूसरों ही की भलाई के निमित्त कुछ कर्म करो। इसमें तो तुमको आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

उपकार का शब्द सुनने में अच्छा लगता है मगर यह सचाई नहीं है। दुनिया में कौन किस को लाभ पहुँचा सकता है। यह दुनिया भगवान की है। ईश्वर पूर्ण है। पूर्ण कारीगर का कार्य सदा पूर्ण हुआ करता है। यदि उसमें त्रुटि हो तो कारीगर अधूरा ठहरेगा। क्या वह तुम्हारी सहायता के आधीन है। हम तो ऐसा नहीं समझते हैं और न यह बात हमारी समझ में आती है। ध्यान के साथ देखा, भली प्रकार सोचा और विचारा, हम को तो एक चींटी

भी किसी की सहायता की आश्रित दिखाई नहीं देती। वह आश्रित क्यों होने लगी। वह भी उस ईश्वर की जीव है जो पूर्ण और निराश्रय है। उसका जीव और किसी दूसरे के आधीन हो, यह बात अब तक हमारी समझ में नहीं आई और न कभी समझ में आयेगी क्योंकि यदि इसकी कुछ असलियत होती तो समझ में आती। तुम समझते हो कि तुमने किसी भिखारी को दो रोटियाँ दे दीं तो उसका उपकार हो गया। यदि यह दो रोटियां तुम उसको न देते तो उसका अपकार होता। तुम चाहे दो या न दो, तुम्हारे देने या न देने से किसी तरह उसका उपकार या अपकार नहीं हो सकता। तुम्हारी तरह वह भी ईश्वर का जीव है। उसके लिये चारों ओर जीविका का द्वार खुला हुआ है। यदि वह न होता तो तुम किसको देते और किस प्रकार उपकार करने का अवसर तुमको हाथ आता।

तुम रोटी देकर उल्टा अपना उपकार उस भिखारी से करा रहे हो। इसमें लाभ तो तुम्हारा ही है। यदि स्कूल न हों तो लड़के कहां पढ़े और किस प्रकार योग्यता प्राप्त करें। तुमने भूखे को रोटी दी और प्यासे को पानी पिलाया। रोटी देने और पानी पिलाने से तुमको प्रसन्नता हुई। उनके हृदय से सहानुभूति, प्रेम और कृतज्ञता की धारें निकलीं और वह तुम में समा गईं। तुम इसको पाकर स्वस्थ, सुन्दर और नेक हृदय बन गये। अब सोचो तो सही कि किस का उपकार हुआ। दो रोटियों के देने से तुमको सौगुना लाभ हुआ जो और किसी तरह सम्भव नहीं था। इस बात का समझना थोड़ा कठिन है। जो दूसरों को पहिनाता है वह आप सुन्दर बनता है। कोई काम बिना फल या बदला दिये नहीं रहता।

भला कर, भला होगा। बुरा कर, बुरा होगा। हर बात और हर भाव का सम्बन्ध मनुष्य के हृदय से है। जो दूसरों को विष देता है वह अपने हृदय को जहरीला करता है। जो दूसरों को अमृत देता है वह अपने हृदय को आप अमृत वाला बनाता है और जीवन का भागीदार बन जाता है। बुरा सोचने वाले आदमी का मन पहिले स्वयं बुरा बन जाता है, तब उससे दूसरों की बुराई होती है। जिस प्रकार काजल जिस बर्तन में भरा होगा वैसा उससे निकलेगा। इसको तुम भी जानते हो और हम भी जानते हैं। इसलिये यहाँ सोच विचार कर काम करने की आवश्यकता है। बिना सोचे विचारे कभी कोई काम न किया करो, अन्यथा पग पग पर ठोकरें खाओगे। जो जैसा करेगा वैसा ही फल पायेगा। यह कर्म की गति अटल है।

उपकार करने से भी मन में फैलाव आता है। दृष्टि उच्च हो जाती है। हजारों सहानुभूति वाले तुमको अपना दिल देते हैं। सब की दृष्टि में तुम भले सिद्ध होते हो। यह लाभ है जो तुमको उपकार करने से प्राप्त होता है। इसलिये तो हम कहते हैं कि जिस काम को दूसरों का उपकार समझ कर किया जाता है वह वास्तव में अपना ही उपकार है। दुनिया जैसी है वैसी ही रहेगी। न इसमें कमी आयेगी न बढ़ोतरी होगी। घटा बढ़ी तो उस समय होती जब यह अपूर्ण होती। यह अपूर्ण नहीं है किन्तु पूर्ण है। यदि तुमको इसमें नुक्स दिखाई देता है तो अपने मन की क्षुद्र-दृष्टि का दोष है। क्या एक कालिज बना देने से देश का सुधार हो जायगा। क्या एक अस्पताल खोल देने से रोग मिट जायेंगे। क्या एक अनाथालय बना देने से अनाथों के दुख दर्द न रहेंगे। काल का चक्र जोर से चल रहा है। अभी कुछ है क्षण मात्र में कुछ हो जायगा। यह दुनिया का हाल है। वह जैसी है वैसी है। इसमें घटा बढ़ी करना

हमारा तुम्हारा काम नहीं है। हाँ, उत्तम विचार लेकर तुम काम करो। इसमें तुम्हारा अपना भला है। फैलो जहाँ तक फैलते बने। चढ़ो, जहाँ तक चढ़ते बने। अवसर मिला है जीवन प्राप्त है। अवसर और जीवन मंगलमय वस्तुयें हैं। इन से काम बनाओ। कबीर साहब का कथन है कि बाज़ार खुला हुआ है, जो चाहो मोल लेलो। जिस सौदे का ख्याल है वह सौदा कर लो। आज का काम कल पर मत टालो। गंगा बह रही है, इसमें झटपट स्नान कर लो, ताकि मैल उतर जाय। यह बात कर्म और उपकार करने से सम्भव है। जीवन का आनन्द यही है कि वह दूसरों के काम आये।

पानी बाढ़ा नदी में, घर में बाढ़ा दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

धन देने से धन नहीं घटता, न उपकार का काम करने से शरीर दुर्बल होता है। जितना अधिक काम किया जायगा उतनी ही अधिक शक्ति शरीर में आती जायगी। जितना दान दोगे मन उतना ही धनी होता जायगा। केवल मन को गति दो। काम करने की शक्ति मन से आती है। इस पिंडी मन का सम्बन्ध उस ब्रह्माण्डी मन से मिला हुआ है, जो धन, शक्ति और योग्यता का भंडार है। इस मन को पकड़ कर रोज रोज हिलाते रहो: नित्यप्रति गति देने से वह आप ही आप अपने भंडार की ओर झुकेगा और वहाँ से और उस स्रोत से नये नये स्रोत जारी करेगा।

यदि देने में कंजूसी करते हो, यदि उपकार कर्म करने से जी चुराते हो तो उसका परिणाम यह होगा कि असली स्रोत से दूर दूर रहोगे और तुम्हारे मन में मैल की काई जम

जायगी। कूड़ा करकट इकट्ठा हो जायगा और प्रवाह की धार रुक जायगी। धार के रुकने से तुम अपने जीवन के उत्तराधिकार से अलग हो जाओगे और बेचैन रहोगे।

नवां प्रकरण

कर्म और निवृति और प्रवृति मार्ग

असलियत की समझ और वस्तु है। छुद्र हृदय और पक्षपाती बन कर स्वयं बहकना और दूसरों को बहकाना और वस्तु है। जब कोई आदमी किसी काम को बहुत समय तक करता रहता है तो वह उसका दास हो जाता है और आदत कुछ इस तरह की हो जाती है कि फिर वह किसी ओर देखना नहीं चाहता। वह कट्टर हो जाता है। मनुष्य को वास्तव में नवीनता प्रिय और उन्नति प्रिय होना चाहिये। धर्म हमारे लिये है। हम कुछ धर्म के लिये तो नहीं हैं। लेकिन सचाई यह है कि व्यवहार में धर्म हमारे लिये दिखाई नहीं देता किन्तु उल्टे हम ही धर्म के लिये बने हुये प्रतीत होते हैं।

इसी प्रकार निष्ठा वालों की भी दशा देखी जाती है। उनके सामने रास्ता है मगर वह सोच विचार के साथ रास्ते पर नहीं चलते। इसमें मार्ग का या निष्ठा का क्या दोष है।

कर्म को प्रवृति मार्ग कहा जाता है और वह है भी अधिकतर प्रवृति मार्ग मगर वह निवृति का भी साधन बन सकता है, बशर्ते कि कोई उससे काम लेना जाने। प्रवृति मार्ग में काम धंधा करना पड़ता है। उन्नति का ध्यान पग पग पर रखना पड़ता है। निवृति मार्ग लय का मार्ग है। एक में जीवन है दूसरे

में मृत्यु है। एक व्यक्ति चाहता है कि मैं जीऊं, भोग विलास करूं, दुनिया में नाम और यश पैदा करूं। दूसरा व्यक्ति इन सब बातों से उपराम हो गया है। वह कुछ करना धरना नहीं चाहता। उसने सब झमेले तय कर लिये हैं। देखो इन दोनों के संस्कारों में कितना अन्तर है। एक का लय की ओर रुख है और दूसरे का जीवन की ओर। जीवन के इच्छुक को मृत्यु की ओर ले जाना और मृत्यु के इच्छुक को जीवन की ओर लाना अत्याचार है और गलती है। इसीलिये कहा जाता है कि ज्ञान का अधिकार सब को नहीं है। इसका सच्चा अधिकारी कोई कोई मिल सकता है। इनमें जमीन और आकाश का अन्तर है। मृत्यु और जीवन की परिभाषा से तुम्हारा चित्त घबराता होगा मगर हम क्या करें, जो बात कहते हैं स्पष्ट कहते हैं। मृत्यु से अभिप्राय नाश से नहीं है, क्योंकि यहाँ कोई वस्तु नाश नहीं होती। केवल रूप या दशा बदलती रहती है जैसे साँस आती जाती है। वास्तव में वैसे ही सृष्टि और लय की दशा है। जब साँस का रुझान बाहर की ओर है तब सृष्टि है और जब वह अंतर की ओर ध्यान देती है तब लय है। जो लोग स्वाभाविक रूप से बहिर्मुखी हैं उनको ऐसे ढंग से बाहर की ओर लगाया जाय कि यदि वह चाहें तो कुछ दिनों पश्चात् अंतर मुखी वृति का साधन भी कर सकें किन्तु दृष्टि के बिल्कुल बाहरमुखी होते हुये यदि कोई व्यक्ति चाहे कि वह तुरन्त अंतर में प्रवेश कर ले तो यह बहुत कठिन काम है। जो काम सृष्टि में होता है वह नियम पूर्वक होता है। तुम भी यकायक किसी बच्चे को न बूढ़ा कर सकते हो और न बूढ़े को बच्चा बना सकते हो। इसमें समय लगता है। बच्चे को एक न एक दिन बूढ़ा तो होना ही है। इसकी समझ हर व्यक्ति में होती है। बच्चे ने अभी जीवन क्षेत्र में पदार्पण किया है,

खेलता है, कूदता है। सैर तमाशों में प्रवृति है। इसे अभी से क्यों व्यर्थ में छेड़ते हो। उसे काम करने दो। वह अच्छी प्रकार प्रयत्न करे। पढ़े लिखे, व्यवहार व व्यापार करे। अध्यात्म का संस्कार तो अन्तःकरण में अवश्य डाल दो। समय पर सब कुछ हो जायगा। हाँ, एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उसकी शिक्षा और पालन पोषण का उचित प्रबन्ध रहे ताकि दुनिया के हालात उसके शिष्टाचार को न बिगाड़ सकें। जिस तरह तुम किसी नन्हे पौदे के चारों ओर बाढ़ लगाकर घिराव की दशा पैदा कर देते हो ताकि कोई पशु मुँह न मार सके और इसके बढ़ाव में हानि न पहुँचा सके, इसी प्रकार बच्चे की आवश्यक संभाल का प्रबन्ध रहे। बच्चा भी संयम और नियम में रहता हुआ दुनिया का ज्ञान प्राप्त करता जाय। ज्ञान तो वास्तव में इसे अब भी प्राप्त है। सब कुछ इसके अंदर मौजूद है। केवल मन के पर्दों को फाड़ना और पवित्र करना वांछित है। जिसका हृदय खुला हुआ है वह चतुर हो जाता है। बच्चे का रुझान प्रवृति की ओर है इसलिये धीरज से काम लो। समय आने दो तब वह निवृति की ओर अपने आप झुकने लगेगा। जिस समय सब वृतियाँ सिमटने लगेंगी उस समय लय की आवश्यकता होगी। तब निवृति मार्ग की शिक्षा काम दे सकेगी। तब तक इन्तजार करने की आवश्यकता है।

दसवाँ प्रकरण

कर्म का आदर्श

जो जैसा करता है वैसा पाता है। जो जैसा कहता है वैसा सुनता है।' जो जैसा सोचता है वैसा होता है। करना, कहना और सोचना यह तीनों ही कर्म हैं। एक हाथों का कर्म है,

दूसरा जिभ्या का और तीसरा मन का। काम करने के ये तीन ढंग हैं। एक स्थूल है दूसरा सूक्ष्म है और तीसरा कारण है। एक मन का मंडल है जो सबसे ऊँचा है। दूसरा जिभ्या का है जो बीच का है, तीसरा हाथ का है जो सबसे नीचा है। मनुष्य सत-चित-आनन्द है। सत अस्तित्व है, चित चैतन्य है और आनन्द आनन्द है। यह तीन गुण हैं और मनुष्य स्वस्वरूप है। सच्चिदानन्द स्वरूप है और सत, रज, तम उसके गुण हैं। आनन्द का प्रतिबिम्ब सत है जिसमें प्रकाश, ज्ञान और आनन्द है। चित का प्रतिबिम्ब रज है जिसमें सोच फिक्र, खेंचातान क्रिया है। आनन्द का प्रतिबिम्ब तम है जिसमें अस्तित्व, जड़ता और मूढ़ता है। जब स्वरूप है तब गुण भी हैं। गुण स्वरूप से कब अलग हैं। दोनों रले मिले हुए हैं। गुण सर्वदा अपने गुणी के साथ होते हैं। शाहजहाँ देहली का बादशाह आगरे के क़िले के अन्दर बैठा हुआ सोच रहा था कि बेगम मुमताज महल की क़ब्र बनवाये जो दुनिया में अद्वितीय हो। यह बात उसकी समझ में आ गई। उसने कारीगर बुलाये। नक्शा बनवाया। सामान एकत्रित किया। हजारों मजदूर लगाये गये। वर्षों काम होता रहा। इमारत बन गई। ताजमहल का रौज़ा तैयार हो गया जो अद्वितीय है। यह बाह्य जगत में बाह्य कर्म का आदर्श है। जो देखता है अचंभित होता है। यह इमारत कहाँ से निकली थी? शाहजहाँ के मन से निकली थी। मन ही सब का भंडार है।

हमीदा बानो राजस्थान की रेतीली भूमि पर बैठी हुई सोच रही थी और अपने पाँव के तलुओं में सिंहासन, कंवल, चक्र और गदा के चित्र प्रसन्न हो होकर बना रही थी। रानी गर्भवती थी। हुमायूँ ने उसे देखा तो पूछा कि बानो तुम क्या

कर रही हो। इसने उत्तर दिया कि मैं यह सोच रही हूँ कि मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो वह मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ, साहसी और बुद्धिमान हो। पाँव में चिन्ह बना रही हूं कि यही चिन्ह उसके पांव में भी हों। शंख, चक्र, गदा पद्म बुद्धिमता और अधिकार के चिन्ह है। ईश्वर इच्छा कि लड़का पैदा हुआ। माँ के नलुओं के सब चिन्ह उसके पाँव में मौजूद थे। अकबर अकबर ही हुआ। अपने समय में उससे अधिक शक्तिशाली दुनिया में कोई बादशाह नहीं था। अकबर को किसने बनाया? उसकी माँ हमीदा बेगम ने। अकबर कहां से निकला? उसी बुद्धिमान माता के पेट से। यह कर्म के आदर्श का दूसरा रूप है।

मुंशी वलीराम दारा शिकोह का दरबारी था जो मुंशी, और स्वामी भक्त था। जिस समय दारा शिकोह मारा गया, औरंगजेब ने उसको अपना मुंशी बनाया। संयोग की बात कि एक दिन वह कागज़ क़लम दवात हाथ में लिये बादशाह के सम्मुख आया। बादशाह का ध्यान दूसरी ओर था। प्रणाम किया मगर बादशाह का उसकी ओर ध्यान भी नहीं हुआ। वह एक घंटा इसी सोच में खड़ा रहा मगर जब देखा कि बादशाह आकर्षित नहीं होता है मन में विचार आया कि ऐसे बादशाह की क्या सेवा करना जो मेरी तरफ देखता भी नहीं है। चलो अब ऐसे अविनाशी की सेवा करें जो पूर्णतया मेरा होकर ही रहे। कागज़ क़लम दवात ज़मीन पर पर पटक दी और बादशाह को बिना प्रणाम किये चुपके से खिसक गया। मथुरा के विश्राम घाट पर आकर डेरा जमाया। उसके चले जाने पर बादशाह को सूचना मिली। पूछा कि दीवान किधर गये। किसी को ज्ञात नहीं था। कोई क्या उत्तर देता। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि बादशाह को अपनी ओर आकर्षित न पाकर

वह अप्रसन्न होकर मथुरा चला गया है। चूँकि वह भला और ईश्वर भक्त था। बादशाह उसको पसन्द करता था। इसलिये वह स्वयं मथुरा आया। विश्राम घाट पर पहुँचा। वलीराम ने प्रणाम तक नहीं किया और बेपरवाई से पाँव फैलाकर ज़मीन पर लेट रहा।

बादशाह मुस्कराया। क्यों वलीराम! पाँव फैलाना कब से सीखा? उत्तर दिया गया कि जब से हाथ समेटना सीखा है। बादशाह ने चाहा कि वह फिर अपना काम काज करे मगर मन धनवान बन गया था। मन में प्रकाश और एकत्व का खेल दृष्टिगोचर हो गया था। सेवा करनी बिल्कुल अस्वीकार करदी। यह अवस्था कैसे और कहां से उत्पन्न हुई। मन ही से तो उत्पन्न हुई। मन ही में थी। मन को धक्का लगा। दबी हुई शक्ति उभर खड़ी हुई। यह मन के आनन्द का, लय होने का आदर्श है।

अभिप्राय यह है कि यह अवस्थायें हैं और कर्म करने से इनकी प्राप्ति होती है। जब कर्म बिल्कुल निष्काम हो जाता है तो वह अध्यात्म के चौथे पद का सुगमता से अधिकारी बनता है जो सर्वोच्च इष्ट का आदर्श है।

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥

गुरु सबका कलयण करें।

शब्द

करनी

काम जो करना हुआ, चित्त दे उसे करते रहो।
छोड़ो दुविधा दुर्मती, द्विचताई से डरते रहो॥
यह समझ लो तुम हुये, जैसा किया कर्म और विचार।
अपनी करनी पार उतरनी, है यही उपदेश सार॥
सोचो मन में अपने औरों से, न पूछो बात को।
बच के चला दूर कर के, मन के सब उतपात को॥
एक चित हो कर करो, सुमिरन भजन दिन रात तुम।
करनी से हो लगन सच्ची, कथनी को दो मात तुम॥
सहज में साधन हो, कठिनाई की चिन्ता छोड़ कर।
काम में अपने लगो, बातों से मुँह को मोड़ कर॥
जो करो पूरा करो करना हो, जो वह करलो आज।
भक्ति मुक्ति योग युक्ती का, सजालो विमल साज॥
राधास्वामी की दया से, जनम अपना लो बना।
गुरु की सत संगत करो, सब पूरी होगी कामना॥